संपादनः
राजेश खिंदरी
रश्मि पालीवाल
सी.एन. सुब्रह्मण्यम
हृदयकांत दीवान

सहसंपादकः
माधव केलकर
दीपक वर्मा

चित्रांकनः
धनंजय खिरवड़कर

सहयोगः
टुलटुल विश्वास
जया विवेक
अजय शर्मा

संदर्भ

शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक-4, मार्च-अप्रैल 1995

संपादन एवं वितरणः
एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद- 461 001 (म.प्र.)
फोनः 07574 - 3518

वार्षिक सदस्यता (6 अंक): 35 रुपए

मुखपृष्ठः चिड़िया और उसके बच्चे, फोटो 'द सीक्रेट वर्ल्ड ऑफ एनीमल्स' से साभार।
पिछला कवरः महाराष्ट्र के औरंगाबाद शहर के पास स्थित एलोरा गुफाओं में से एक विश्वकर्मा गुफा के बाहरी हिस्से की 1795 में बनाई गई एक पेंटिंग। चित्रकार - जेम्स वेल (ब्रिटेन) को एलोरा की अन्य गुफाओं की तुलना में यह गुफा सबसे ज्यादा भव्य और शानदा लगी थी। चित्र 'अर्ली व्यूज़ ऑफ इंडिया' से साभार।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित
संदर्भ में छपे मतों से मानव संसाधन विकास मंत्रालय का सहमत होना आवश्यक नहीं है

इस अंक में

आपने लिखा 2

झूठ, सफेद झूठ और आंकड़े 5

क्यों करें प्रयोग 15

कैसे मिले गुण हमें 18

कितनी स्वतंत्रता मिले बच्चों को 31

दो तरह की अम्लीयता क्षारीयता 39

ये ढांचे कैसे बने? 45

सवालीराम 59

सेल, सेल है बैटरी नहीं 62

लिखना पढ़ना सिखाने की विधियों के बारे में 68

सिखाने की क्या गति और क्या विधि 75

मानसरोवर झील का दैत्य 81

कठिन सिद्धांत - सरल प्रयोग 92

ज़रा सिर तो खुजलाइए 96

कैसे मिले गुण हमें 8

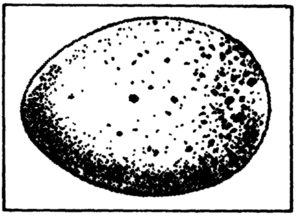

गुणों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाने में गुणसूत्रों की भूमिका है। इस प्रक्रिया का अपना पूरा-का-पूरा एक चक्र है। इसी का अध्ययन किया जाता है अनुवांशिकी में। जंतुओं में प्रजनन की सहायता से इसे समझने की एक कोशिश 18

लिखना पढ़ना सिखाने की विधियों के बारे मे 68

शिक्षा में नवाचार की भूमिका अहम् है। लेकिन नवाचार कैसे हो। क्या नई विधियां पुरानी विधियों को कूड़ेदान में फेंककर अपनाई जा सकती हैं? या दूसरे परिवेश में विकसित विधियों के बीच क्या संबंध हो सकता है? क्या कोई एक रामबाण विधि हो सकती है? इन्हीं सवालों पर लेव तोलस्तोय का एक लेख 68

आपने लिखा

प्रिय संपादक,

संदर्भ के तीसरे अंक में प्रकाशित अनीता रामपाल का लेख 'कहां - कहां नहीं है बल' बेहद अच्छा लगा। मुझे याद है कि जब हम अहमदाबाद में इस तरह का एक पाठ लिखने के लिए विचार कर रहे थे तो कितनी दिक्कतें आई थीं। अनीता का यह प्रयास वाकई सराहनीय है।

दीपक कुमार गुप्ता
गांधीनगर (गुजरात)

प्रिय संपादक,

संदर्भ का तीसरा अंक मिला। अमिताभ मुखर्जी का लेख 'सीधे सवाल - टेढ़े जवाब' पढ़ते समय याद आया कि सवालीराम के जवाब लिखते-लिखते हमारी स्थिति भी कुछ वैसी ही हुई थी।

लारा पटवर्धन
बंगलौर (कर्नाटक)

प्रिय संपादक,

हमारे विद्यालय के सभी शिक्षकों का मानना है कि यह पत्रिका शिक्षकों के लिए उपयोगी है। साथ ही इसमें दी जाने वाली सामग्री विद्यार्थियों के ज्ञानवर्धन में भी सहायक है।

प्राचार्य,
विवेकानंद उ. मा. विद्यालय, होशंगाबाद

वाक्य रचना ....

प्रिय संपादक,

संदर्भ के तीसरे अंक में प्रकाशित लेख 'बहस से निकले निष्कर्ष' होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के उद्देश्य की झलक प्रस्तुत करता है। वहीं 'सीधे सवाल - टेढ़े जवाब' बच्चों के आसान से लगने वाले प्रश्नों की जटिलताओं को स्पष्ट करते हुए उन्हें बच्चों के स्तर पर समझाने की कठिनाइयों से रूबरू कराता है - कृपया इस प्रकार के प्रश्नों का क्रम जारी रखिए। अनीताजी ने बल की बात सुलझे ढंग से समझाई और वह भी बच्चों के स्तर पर - साधुवाद।

इसी लेख में पृष्ठ 29 पर यह वाक्य रचना अखरने वाली है "चांद का खिंचाव पृथ्वी से 6 गुना कम है" तथा "चांद पर तुम्हारा भार 6 गुना कम हो जाएगा।"

आमतौर पर गुना का अर्थ ही अधिकता से है। जैसे 'क्ष' का 6 गुना 6क्ष या 6 X क्ष होगा। इसके साथ 'कम' शब्द का प्रयोग कुछ ऐसा लगेगा जैसे किसी व्यक्ति को 'उदार-हृदय कंजूस' कहा जाए। सही शब्दावली के लिए 6 गुना के स्थान पर 1/6 गुना या छठवां भाग कहना ज़्यादा सही होगा। हां 'बृहस्पति पर भार 5 गुना अधिक होगा' कहना ही अधिकता स्पष्ट करता है।

एक बात और कि गलतियां तो नगण्य हैं, फिर भी मेरे लेख में मेरा नाम छूट जाने की गंभीर भूल कैसे हो गई?

यतीश कानूनगो
डाइट, देवास (म. प्र.)

(संदर्भ के जनवरी- फरवरी अंक में प्रकाशित लेख 'आओ स्कूल-स्कूल खेलें' के लेखक यतीश कानूनगो हैं। असावधानीवश उनका नाम छूट गया था। इसके लिए हमें खेद है।
संपादक मंडल)

प्रिय संपादक,

'संदर्भ' एक सराहनीय प्रयास है। इसके माध्यम से शिक्षकों के अनुभव शिक्षकों तथा आम पाठकों तक पहुंच सकेंगे।

हमारी राय में विज्ञान और गणित के अलावा दूसरे विषयों के शिक्षकों के अनुभवों को भी प्रकाशित किया जाए। साथ ही सामयिक शैक्षणिक घटनाक्रम पर आधारित सामग्री का भी समावेश संभव हो तो ठीक रहेगा। क्या इसे मासिक बनाया जा सकता है? मेरा सुझाव है कि संदर्भ को और आकर्षक बनाने के लिए मुखपृष्ठ को रंगीन बनाना और आकार को थोड़ा और बड़ा करना ठीक रहेगा।

प्राचार्य
आयुध निर्माणी उ. मा. विद्यालय, इटारसी

खुली किताब कब तक देगी साथ ....?

प्रिय संपादक,

खुली किताब परीक्षा निःसंदेह बेहतर है और साथ ही परीक्षकों के लिए अधिक चुनौतीपूर्ण भी, तभी तो पुस्तक में से नकल करके लिखे गए जवाबों का मूल्यांकन कैसे हो, यह सवाल इतना पेचीदा बन जाता है। संदर्भ के तीसरे अंक में प्रकाशित लेख 'परीक्षा तो थी फिर भी' से जुड़े नकल के इस सवाल पर कुछ कहना चाहूंगी। आपके अनुभवों से यह सिद्ध हो जाता है कि 'नकल के लिए अक्ल चाहिए' यह पुरानी कहावत कितनी सटीक है। यह भी सही है कि नकल में भी क्षमताओं के विभिन्न स्तर देखे जा सकते हैं। पर इस तथ्य को भी नज़र-अंदाज़ नहीं किया जाना चाहिए कि जितना महत्वपूर्ण समझदारी से पढ़ या लिख पाना है, उतना ही अपने विचारों को अपने शब्दों में अभिव्यक्त कर पाना भी है। विद्यार्थियों को अगर अपने शब्दों में जवाब लिखने से ज़्यादा आसान, किताब में से नकल करना लग रहा है तो इस बात की पड़ताल होनी चाहिए कि क्या उनमें अपने शब्दों में बोल या लिख पाने का पर्याप्त आत्मविश्वास नहीं है? ऐसा है तो उसके लिए प्रयास ज़रूरी है। कक्षा में इसके लिए कोशिशें ज़रूर होती होंगी। परन्तु परीक्षा में भी नकल करके लिखे गए जवाबों को कम न आंकते हुए भी विद्यार्थियों को अपने शब्दों में लिखने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।

ऐसा न हो कि आगे चलकर उन्हें सिर्फ इसलिए गंभीरता से न लिया जाए क्योंकि वे अपनी समझ और जानकारी को अभिव्यक्त न कर सकें। यह अपेक्षा भी तो गलत ही है कि विद्यार्थी हमेशा किताब में लिखी चीज़ों से सहमत हो। आखिर किताब में जो लिखा है वो अंतिम सच तो नहीं होता। विद्यार्थी का अपना एकदम अलग मत भी हो सकता है। ऐसे में उसे अपने शब्दों में अपनी बात कह पाना आना ज़रूरी है।

अंततः एक अलग पहलू यह भी ध्यान में रखना ज़रूरी है कि विद्यार्थी की किताबों पर निर्भरता कहीं बहुत न बढ़ जाए। यदि यह मान भी लिया जाए कि वह सिर्फ 'खुली किताब परीक्षाओं' में ही बैठेगा; तो भी जीवन की हर परिस्थिति में जवाब तलाशने के लिए उसके पास खुली किताब मौजूद होगी, ऐसा संभव नहीं।

शशि सक्सेना, नई दिल्ली

प्रिय संपादक,

संदर्भ के जनवरी-फरवरी 95 के अंक में प्रकाशित निम्न दो बातों की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे:

1. 'आसपास बिखरे हैं सूचक' लेख में लाल जासौन के फूल का ज़िक्र है। जासौन को जसौदी भी कहा जाता है तथा इसके फूल को (Shoe Flower) भी कहते हैं। इसी पौधे का अंग्रेज़ी नाम (China Rose) तथा वानस्पतिक नाम (Hibiscus Rosa Sinensis) है। पेड़-पौधों के प्रचलित नाम अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग होते हैं। इसलिए एक नाम के साथ-साथ अन्य प्रचलित तथा वानस्पतिक नामों का उल्लेख करना हमेशा पाठकों के हित में होगा।

2. 'पानी को जांचें परखें' लेख में उदासीनीकरण के लिए कोष्ठक में टाइट्रेशन लिखा गया है जो गलत है। उदासीनीकरण का तात्पर्य न्यूट्रलाइज़ेशन से होता है तथा अनुमापन को टाइट्रेशन कहते हैं।

डॉ. ओ.पी. जोशी एवं डॉ. जयश्री सिक्का
गुजराती साइंस कॉलेज, इंदौर (म. प्र.)

(अनुवाद की इस गलती के लिए हमें खेद है। - संपादक मंडल)

प्रिय संपादक,

संदर्भ का दूसरा अंक मिला। अंतिम पेज पर 'चीता' पढ़ा तो पढ़ता ही चला गया। मुझे यह काफी रोचक लगा। मुझे पत्रिका का आकार तो ठीक लगता है, लेकिन मुखपृष्ठ कुछ आकर्षक होना चाहिए।

सरन बिहारी माथुर
भोपाल (म. प्र.)

एक नज़र ...

कार्टूनिस्ट - संजय भोंसले, सेंधवा म.प्र.

आंकड़ों की बाज़ीगरी कमाल है सांख्यिकी का। एक दास्तां, जिसमें ऐसी ही एक गफलत का खुलासा किया गया है।

झूठ सफेद झूठ और आंकडे

• स्टीफन जे. गूल्ड

अनुवादः मनोहर नोतानी

हाल ही में मेरा सामना मार्क ट्वेन की दो चुटकियों से बड़े ही निजी अंदाज़ में हुआ। इनमें से एक तो मैं इस लेख के अंत तक मुल्तवी रखता हूं। अब दूसरी चुटकी जो है वह झूठ की तीन प्रजातियों की ओर इशारा करती है - झूठ, सफेद झूठ और आंकड़े।

आंकड़ों के ज़रिए सच्चाई को तोड़-मरोड़कर पेश किए जाने के उस जाने-पहचाने अंदाज़ को लेते हैं जो मेरी अपनी कहानी पर पूरी तरह से फिट बैठता है। सांख्यिकी में औसत की धारणा को प्रस्तुत करने के कई तरीके हैं। इनमें से एक तो है आमतौर पर इस्तेमाल किया जाने वाला समग्र औसत - कि सारी चीज़ों का जोड़ निकालो और उसे (उन चीज़ों को) पाने वालों की संख्या से विभाजित करो। मसलन 100 टॉफियों को 5 बच्चों में बराबर-बराबर बांटने का अर्थ यह होगा - हर बच्चे को 20-20 टॉफियां। (इससे ज़्यादा निष्पक्ष भला हम कैसे हो सकते हैं!)

अब माध्यिका जो है वह इसी औसत की धारणा का एक अलग मापदण्ड है। माध्यिका यानी ठीक बीचों-बीच का बिन्दु। हम अगर आंकड़ों के वितरण का 'x y' अक्ष पर कोई ग्राफ लें तो उस ग्राफ का मध्य बिन्दु उस वितरण की माध्यिका होगा। यानी वह बिन्दु जिससे आधे आंकड़े छोटे होंगे और आधे आंकड़े बड़े। टॉफियों और बच्चों के उदाहरण के सिलसिले में अगर मैं उन पांच बच्चों को उनकी लम्बाई के बढ़ते क्रम में खड़ा करूं तो माध्यिका पर का बच्चा, पहले वाले दो बच्चों के

मुकाबले लम्बा होगा लेकिन क्रम में आने वाले अगले दो बच्चों से तो वह निश्चित तौर पर छोटा पड़ेगा। (और अब अगर 100 टॉफियों को बच्चों की लम्बाई के हिसाब से बांटा जाना हो तो सबसे पहले वाले दो बच्चे तो गए काम से!)

एक और उदाहरण लें - अक्सर ऐसा होता है कि सत्तारूढ़ पार्टी का कोई नेता बड़े ज़ोर-शोर से कह देता है, "हमारे देश की औसत आय 15,000 रुपए सालाना प्रति व्यक्ति है।" तभी कोई विपक्षी नेता चुटकी लेकर कहता है "लेकिन हमारे आधे नागरिक तो 10,000 रुपए सालाना से भी कम कमाते हैं"। दोनों ही सही हैं। पहला वाला नेता औसत का सहारा लेता है तो दूसरा नेता माध्यिका का। (ऐसे मामलों में औसत हमेशा माध्यिका से बड़ा होता है, क्योंकि जहां तक औसत का सवाल है एक ही करोड़पति कई सौ गरीबों पर भारी पड़ सकता है। लेकिन माध्यिका की गणना में वह करोड़पति सिर्फ एक ही फकीर को हटा सकता है।)

लेकिन आंकड़ों (सांख्यिकी) के प्रति शक और कड़ुवाहट पैदा करने वाला जो व्यापक मुद्दा है वह ज़्यादा तकलीफदेय है। बहुत से लोग दिल और दिमाग, जज़्बात और अक्लमंदी के बीच फर्क करते हैं। यह फर्क गलत तो है ही, दुर्भाग्यपूर्ण भी है। कुछ मौजूदा विश्वास भावनाओं को ही असल चीज़ मानते हैं। ऐसे समाजों में कोई भी काम करने का उचित आधार भावनाएं ही मानी जाती हैं। बुद्धि को हमेशा निचली सीढ़ी पर ठेल दिया जाता है। इस सबके चक्कर में पिसती है तो बेचारी सांख्यिकी।

मेरी अपनी कहानी आंकड़ों की निजी दास्तान है। और अगर इसे सही तरीके से लिया जाए तो यह काफी प्रेरणास्पद भी है। मेरी इस कहानी में विज्ञान के रूखे-सूखे, शास्त्रीय ज्ञान की उपयोगिता की ओर इशारा किया गया है। दरअसल दिल और दिमाग तो एक ही व्यक्ति के एक ही शरीर के दो हिस्से हैं।

हुआ यह कि जुलाई 1982 में मुझे पता चला कि मुझे पेट का कैंसर (एब्डॉमिनल मेसोथेलिओमा) हो गया है। यह कैंसर, जो कि एस्बेस्टॉस की वजह से होता है, काफी गंभीर और बिरले ही होता है। ऑपरेशन के बाद मैं थोड़ा ठीक हुआ तो डॉक्टर से मेरा सबसे पहला सवाल था "मेसोथेलिओमा पर सबसे बढ़िया तकनीकी साहित्य क्या है?" लेकिन उसने बड़ी चतुराई से मेरे इस सवाल को यह कह कर टाल दिया कि इस बीमारी पर उपलब्ध मेडिकल साहित्य में कहीं भी ऐसा कुछ नहीं है जो उपयोगी हो।

सिर्फ यही एक ऐसा वाकया है, जहां मेरी उस डॉक्टर ने मुझसे बेझिझक सच न कह कर टालमटोल का रास्ता अपनाया था। खैर एक बुद्धिजीवी को साहित्य से अलग-थलग रखना उतना ही मुश्किल होता है जितना इंसान की मौजूदा प्रजाति से ब्रह्मचर्य का पालन करवाना। बीमारी के बाद जैसे ही मैं चलने-फिरने के काबिल हुआ, मैंने सीधे हार्वर्ड विश्व विश्विद्यालय की ओर रुख किया। वहां के मेडिकल पुस्तकालय में मैंने पेट के कैंसर से

औसत बनाम माध्यिका

अगर यह मान लें कि हम किसी एक ऐसे देश के निवासी हैं, जिसमें कुल नागरिकों की संख्या मात्र 11 है। और इन नागरिकों की वार्षिक आय बढ़ते हुए क्रम में कुछ इस प्रकार है -

नागरिक (क्रमांक)	वार्षिक आय (रुपए)
1	6, 200
2	7, 300
3	7, 500
4	8, 500
5	9, 000
6	9, 500
7	12, 000
8	15, 000
9	20, 000
10	30, 000
11	40, 000

सभी नागरिकों की कुल आय = 1, 65, 000

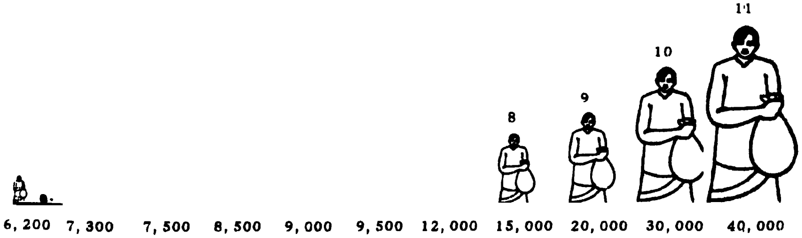

सत्तारूढ़ पार्टी का नेता जिस औसत की बात कर रहा है उसे सांख्यिकी में अंकगणितीय औसत कहा जाता है।

$$\text{अंकगणितीय औसत} = \frac{\text{सभी मूल्यों का कुल योग}}{\text{वस्तुओं की कुल संख्या}}$$

यह तो हुआ औसत की धारणा का एक पैमाना। दूसरे मापदण्ड यानी माध्यिका, का माप पता करने के लिए हमें पहले उस समूह की सभी वस्तुओं को क्रमवार व्यवस्थित करना पड़ता है।

मसलन, काल्पनिक देश के नागरिकों की माध्यिका वार्षिक आय जानने के लिए हमने ऊपर दी गई तालिका और रेखाचित्र दोनों में ही नागरिकों को वार्षिक आय के बढ़ते हुए क्रम में दर्शाया है। अब ऐसे एक क्रम में जो सबसे बीच की वस्तु होगी उसके मान को ही सांख्यिकी में माध्यिका कहते हैं। क्रम में माध्यिका मान वाली वस्तु के आगे जितनी वस्तुएं होंगी उतनी ही पीछे होंगी। यानी 3 वस्तुओं के क्रम में दूसरी वस्तु का मान माध्यिका होगा, 7 वस्तुओं के क्रम में चौथी वस्तु का और 11 वस्तुओं के क्रम में छठी वस्तु का मान आदि।

इस जानकारी के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों नेता अपनी-अपनी जगह सही हैं। तालिका और ग्राफ में दिए आंकड़ों के अनुसार:

देश की औसत वार्षिक आय = सभी आयों का अंकगणितीय औसत

$$= \frac{\text{सभी नागरिकों की कुल वार्षिक आय}}{\text{देश में नागरिकों की कुल संख्या}}$$

$$= \frac{\text{रु. } 1,65,000}{11}$$

= 15,000 रुपए सालाना प्रति व्यक्ति

देश की माध्यिका आय = नागरिकों की क्रमवार तालिका में बीच के नागरिक की सालाना आय
= छठे नागरिक की आय
= 9,500 रुपए प्रति साल

ग्राफ और तालिका से साफ ज़ाहिर है कि माध्यिका आय वाला नागरिक (नागरिक क्रमांक 6) देश की जनसंख्या को बराबर दो समूहों में बांटता है। - आधा हिस्सा उन लोगों का जिनकी सालाना आमदनी 10,000 रुपए से भी कम है, और बाकी के आधे हिस्से में वे नागरिक आते हैं जिनकी वार्षिक आय 10,000 रुपए से अधिक है अर्थात, इस काल्पनिक देश की औसत आय 15,000 रुपए प्रति व्यक्ति होते हुए भी देश की आधी जनता 10,000 रुपए सालाना प्रति व्यक्ति से भी कम कमाती है।

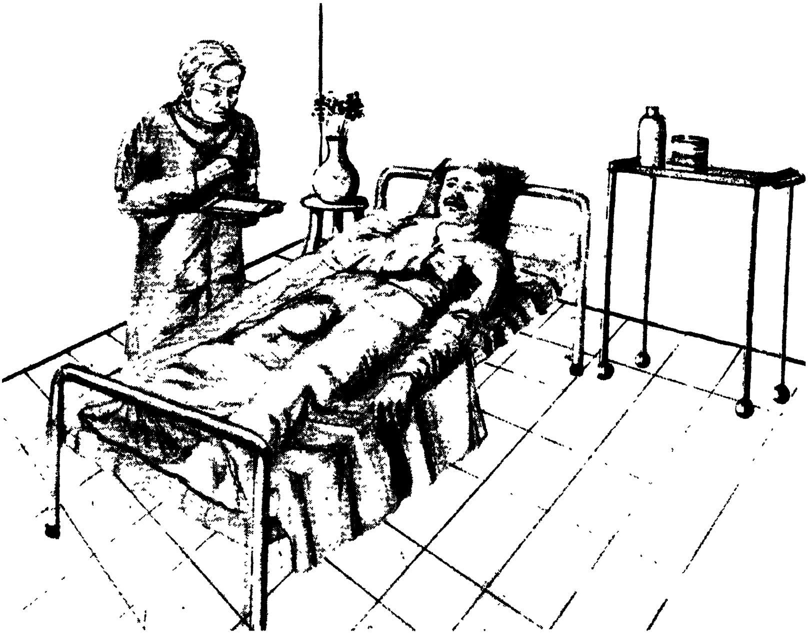

सम्बन्धित सारी हालिया सामग्री खोज निकाली। एक घंटे बाद जब मैं सारा साहित्य पढ़ चुका तो मेरा माथा ठनका।

मुझे समझ में आया कि मेरी उस डॉक्टर ने मुझे उस तल्ख सच्चाई से दूर क्यों रखा था। सारे-के-सारे पन्ने मानो अपनी पूरी वहशियत में मुझसे चीख-चीख कर कह रहे थे - मेसोथेलिओमा का कोई इलाज़ नहीं है; पता चलने के बाद मरीज़ की औसत (माध्यिका) उम्र तकरीबन 8 महीने है। कुछ देर तक तो मैं धरा-का-धरा रह गया। मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा था। खैर थोड़ी देर बाद मैं मुस्कुराया और मैंने अपने आप से कहा, "तो यह बात थी जिसके कारण उन्होंने मुझे इस बारे में पढ़ने को कुछ नहीं दिया।" शुक्र है मेरा दिमाग फिर चलने लगा।

यदि अल्पज्ञान कहीं खतरनाक होता है तो इससे बढ़िया उदाहरण भला मेरे लिए और क्या हो सकता था? अपनी बीमारी को समझते-समझते मैं यह जानने लगा था कि कैंसर से लड़ने में मनः स्थिति बहुत मायने रखती है। पता नहीं क्यों। (हालांकि मेरे पुराने पदार्थवादी दृष्टिकोण के हिसाब से मेरा अनुमान है कि मन:स्थिति हमारी प्रतिरक्षण प्रणाली को कमज़ोर या पुख्ता बनाने में महत्वपूर्ण रोल निभाती है।) दरअसल यदि सारी चीज़ें जैसे, उम्र, तबका, तंदरुस्ती व सामाजिक-आर्थिक स्थिति वगैरह लगभग समान हों तो यह पाया गया है कि एक ही प्रकार के कैंसर से पीड़ित वे लोग तुलनात्मक रूप से ज़्यादा जीते हैं जो:

1. जीवन के प्रति सकारात्मक रवैया अपनाते हैं।

2. जिनकी इच्छाशक्ति प्रबल होती है।

3. जिनके पास जीने का कोई पुख्ता मकसद होता है।

4. जो किसी भी तरह के संघर्ष के लिए तैयार रहते हैं।

5. जो अपने इलाज व अपनी चिकित्सा की प्रक्रिया में अपने डॉक्टर द्वारा कही गई बात को शब्दशः निष्क्रिय रूप से स्वीकार नहीं करते, बल्कि ठीक होने में अपनी सक्रिय भूमिका निभाते हैं।

कुछ महीनों बाद अपने वैज्ञानिक गुरु व प्रतिरक्षण के क्षेत्र में नोबल पुरस्कार प्राप्त सर पीटर मेदावर से मैंने पूछा कि कैंसर से लड़ने का सबसे बढ़िया नुस्खा भला क्या है?

उनका कहना था, "एक खुशगवार व्यक्तित्व"। सौभाग्य से अगर मैं कुछ हूं तो यही हूं। हौसले से भरपूर और ठंडे मिज़ाज का, कम-से-कम इस मामले में तो। (वैसे भी किसी खास मकसद के लिए एकदम से अपने-आप को एक नए ही रूप में ढाल पाना कमोबेश नामुमकिन ही होता है।)

इसलिए संवेदनशील डॉक्टर अक्सर इस दुविधा में पड़ते हैं: ऐसे में निराशाजनक निष्कर्ष को उजागर करना क्या ठीक होगा, खासकर तब जबकि मनःस्थिति बहुत मायने रखती हो? फिर बहुत कम लोग सांख्यिकी का इतना ज्ञान रखते हैं कि वे ऐसे किसी कथन की जांच पड़ताल सही-सही कर सकें और उसका उचित मूल्यांकन कर सकें। मेरे अपने मामले में मुझे पूरा यकीन है कि मेरा जीवन बचाने में उस तकनीकी समझ का भी बहुत बड़ा रोल था जो मैंने अपने विषय यानी प्रकृति विज्ञान (नेचुरल हिस्ट्री) में काम करते हुए पाई है।

इस सारी समस्या को संक्षिप्त रूप से यूं बांचा जा सकता है, "फलां बीमारी की औसत घातकता या यूं कहें कि जानलेवापन, आठ महीने है?" आप ही बताइए हमारी अपनी बोलचाल की भाषा में इसका अर्थ क्या निकलता है? मुझे तो लगता है ज़्यादातर लोग जिन्हें सांख्यिकी का ज्ञान नहीं है इस कथन को यूं लेंगे, "मैं संभवतः आठ महीने के भीतर चल बसूंगा।"

इसी निष्कर्ष से तो बचना है। सिर्फ इसलिए नहीं कि (इस कथन द्वारा) इस नतीजे पर पहुंचना सिद्धांततः गलत है, बल्कि इसलिए भी क्योंकि मनःस्थिति ऐसे मामलों में बहुत मायने रखती है। यह सही है कि मैं बहुत खुश नहीं हुआ था लेकिन मैंने ऐसा निराशावादी रवैया भी नहीं अपनाया। मेरी तकनीकी मशक्कत के कारण मैं 'आठ महीने की औसत घातकता' कथन को एक अलग अंदाज़ से देख पाया। हालांकि मेरी बात काफी बारीक किस्म की लग रही होगी, लेकिन इसके असर काफी गंभीर और व्यापक हो सकते हैं। फिर इस तरह की सोच मेरे अपने विषय, प्रकृति विज्ञान और जीव-विकास, की विचारधारा को साकार भी करती है। हम आज भी प्लेटो की उस परंपरा का बोझ ढो रहे हैं जिसके तहत

हम चीज़ों को एकदम निश्चित जड़ खांचों में फिट करने के आदी हो गए हैं (और इसीलिए हम 'जीवन की एकदम साफ-साफ शुरुआत' या 'मृत्यु की परिभाषा' जैसी कोशिशों में उलझे रहते हैं। जबकि प्रकृति अक्सर हमें गच्चा दे जाती है और हमारे सामने एक कभी न टूटने वाली निर्बाध निरंतरता के रूप में पेश आती रहती है।)

चीज़ों को एकदम साफ-साफ विभाजन करने और उन्हें अपरिवर्तनशील हिस्सों में बांटने की हमारी इस प्लेटोनिक सोच के कारण हम औसत के सांख्यिकी पैटर्न को गलत ढंग से देखने लगते हैं। बल्कि यूं कहें ठेठ इसी कारण हम असल दुनिया को, उसकी विविधताओं को, उसकी विभिन्न रंगतों को, ठीक उल्टा ही लेते हैं। संक्षेप में कहूं तो हम सांख्यिकी औसत व माध्यिका गणनाओं को ही सरासर सच मान बैठते हैं और इन गणनाओं को संभव बनाने वाली घटबढ़ (अलग-अलग आंकड़ों) को हम इस छुपी हुई गूढ़ सच्चाई का अस्थाई व त्रुटिपूर्ण पैमाना भर मान लेने की गलती करते हैं।

अब यदि माध्यिका ही सच्चाई है और उसके आसपास मंडराने वाले आंकड़े उस सच्चाई तक पहुंचने के औज़ार मात्र हैं तो मैं तो गया काम से। फिर तो मुझे मानना ही पड़ेगा, "आठ महीनों के भीतर ही मुमकिन है मैं दुनिया से खिसक लूंगा।"

लेकिन सारे विकासवादी जीवशास्त्री मानते हैं कि यह घटबढ़, यह वैविध्य ही प्रकृति का सार है। घटबढ़ सिर्फ औसत निकालने का कोई दोषपूर्ण ज़रिया भर नहीं है। देखा जाए तो स्वयं औसत व माध्यिका ही अमूर्त है। इसलिए मैं कैंसर संबंधी आंकड़ों को अलग नज़रिए से देख पाया। और सिर्फ इस कारण नहीं कि मैं आशावादी हूं बल्कि इसलिए भी कि मैं जानता हूं कि विविधता ही वास्तविकता है। मुझे अब इन तमाम आंकड़ों के बीच अपनी जगह तलाशना थी।

जब मैंने आठ महीने की माध्यिका के बारे में जाना तो मेरी पहली सोची-समझी प्रतिक्रिया यही थी कि तो अच्छा, आधे लोग इससे ज़्यादा जिएंगे। इन आधों में मेरी भी गिनती हो, इसकी कितनी संभावना है? अगला एक घंटा मैंने, अपने सारे डर, अपनी तमाम बेचैनियों के बीच, पढ़ते हुए बिताया और एक सुकून भरे नतीजे पर पहुंचा। मैं उन सारी खूबियों का मालिक था जिनके कारण लंबे जीवन की आस बंधती थी। मैं जवान था, मेरी बीमारी कमोबेश शुरुआती दौर में ही पता चल गई थी, मुझे अपने देश का सबसे बढ़िया इलाज मुहैया हो सकता था। मेरे जीने के लिए सारी दुनिया थी। और फिर मैं जानता था कि आंकड़े कैसे सही-सही पढ़े जाएं ताकि हम निराश न हों।

एक अन्य तकनीकी मुद्दे से भी मुझे आशा बंधी। जल्दी ही मेरी समझ में आया कि इस आठ माह की माध्यिका के आसपास के आंकड़ों का जो वितरण होगा वह कमोबेश सांख्यिवदों की भाषा में "दाहिनी ओर का ढलवा" होगा।

(दरअसल मोटे तौर पर आंकड़ों के दो तरह के वितरण देखे जा सकते हैं - संतुलित वितरण और असंतुलित वितरण। संतुलित वितरणों में माध्यिका बिंदु के बाईं ओर का हिस्सा, दाहिने ओर के हिस्से का प्रतिबिंब होता है। असंतुलित वितरण दो तरह के हो सकते हैं - दाहिनी ओर के ढलवां वितरण और बाईं ओर के ढलवां वितरण। दाहिनी ओर के ढलवां वितरण में माध्यिका के दाहिनी ओर का हिस्सा, माध्यिका के बाईं ओर के हिस्से के मुकाबले ज़्यादा दूर तक जाता है। जबकि बाईं ओर के ढलवां वितरण में स्थिति इससे ठीक उलट होती है। यानी माध्यिका के बाईं ओर का हिस्सा दाहिने के मुकाबले ज़्यादा लंबा खिंचता है।)

मेरे मामले में तो यह वितरण दाहिनी ओर का ढलवां होना ही था*; ऐसा मेरा तर्क था। बाईं ओर का हिस्सा अपने साथ उस अटल, कभी न हिलने वाली निचली सीमा-रेखा को जो समेटे था, जिसे हम शून्य कहते हैं (आखिर कैंसर का पता मृत्यु के समय या उसके पहले ही लग सकता है)। इसलिए इस वितरण में निचले (या बाएं) आधे हिस्से के लिए जगह की कमी होनी ही थी। यानी शून्य व

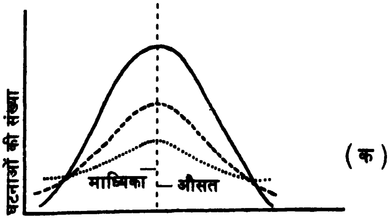

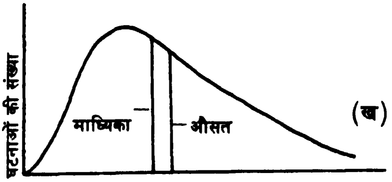

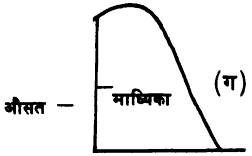

क. संतुलित वितरण - इसमें माध्यिका के दाहिनी ओर का हिस्सा बाईं ओर के हिस्से का प्रतिबिंब होता है।
ख. दाहिना ढलवां वितरण - यह दिखाते हुए कि ऐसे वितरण में औसत, माध्यिका से बड़ा होता है और पूंछ दाहिनी ओर दूर तक जाती है।
ग. दायां ढलवां वितरण - ऐसे वितरण में औसत, माध्यिका से छोटा होता है।

आठ-माह की सीमा-रेखाओं के बीच उस वितरण का कूबड़ उठा होना था। जहां तक ऊपरी (या दाहिने) आधे हिस्से की बात थी तो उसकी पूंछ तो काफी दूर तक जा सकती थी; यानी आठ महीने के बाद से कितने भी सालों तक जा सकती थी। फिर चाहे, अंततः कोई न बचता हो। अब चूंकि मैं यह तो जान ही चुका था कि मेरी अपनी अनुकूल शख्सियत के कारण मैं उस वांछनीय दाहिने हिस्से में ठीया (जगह) पाने का अच्छा-खासा दावेदार था, इसलिए अब इतना ही जानना मेरे लिए बाकी था कि आखिर पूंछ दाहिनी ओर कितनी दूर तक जाती है?

और वास्तव में यह वितरण दाहिना ढलवां था - एक लंबी पूंछ (चाहे कितनी भी पतली) के साथ। यह पूंछ आठ माह की माध्यिका से कई साल आगे तक जाती थी। मुझे उस छोटी-सी पूंछ में अपने न हो सकने का कोई कारण नहीं नज़र आया। मैंने राहत की सांस ली। मेरे तकनीकी ज्ञान ने मेरी मदद की थी। मैंने आंकड़ों के वितरण को सही-सही पढ़ा था। मैंने सही सवाल पूछे थे और जवाब भी पाए। मैंने शायद वह पाया था, जिसे उन परिस्थितियों में सबसे कीमती तोहफा कह सकते हैं - खूब सारा समय। जल्दबाज़ी की कोई ज़रूरत नहीं थी मुझे। मौत का

* मान लीजिए 100 लोगों को वह कैंसर था। पता लगने के बाद हर व्यक्ति कितने महीने जीवित रहा - इस बात के आंकड़ों को कम से ज़्यादा के क्रम में जमा दिया जाए। पता लगने के बाद से कुछ की मृत्यु एक महीने में हो गई, कुछ की 3 महीने में आदि। पचासवें मरीज़ की मृत्यु 8 महीने बाद हुई। बाकी के 50 मरीज़ों की मृत्यु 9 महीने से ले कर कितने भी सालों तक होती रही। यदि बीमारी जानने के बाद एक भी मरीज़, मान लीजिए दस साल तक जी जाए तो ग्राफ में 8 महीने के बिन्दु (जो माध्यिका है) और 10 साल के बिन्दु के बीच का अंतराल शून्य से 8 माह के बिन्दु के अंतराल से कहीं ज़्यादा लंबा होगा। इसीलिए इस ग्राफ में माध्यिका के दाहिनी ओर की पूंछ ज़्यादा लंबी होगी और बाईं ओर का हिस्सा छोटा होगा।

साया मेरे सिर पर नहीं मंडरा रहा था। चिन्ता की कोई बात नहीं थी। मेरे पास समय था - सोचने के लिए, तैयारी करने के लिए, लड़ने के लिए।

· सांख्यिकी वितरणों संबंधी एक बात और- वे किन्हीं 'नियत' परिस्थितियों पर ही लागू होते हैं। (जैसे कि मेरे किस्से में मसला था - चिकित्सा की परंपरागत पद्धतियों द्वारा पेट के कैंसर के इलाज के बाद मेरे बचने की संभावनाएं)

परिस्थितियां अगर बदल जाएं तो इन वितरणों की रूपरेखा भी बदल सकती है। मैं तो अपने इलाज के दौरान जिन विधियों से गुज़रा उन्हें आज़माइशी ही कहा जा सकता है। और अगर किस्मत रही तो मैं उस नए वितरण के सबसे पहले दस्ते का बाशिंदा होऊंगा, जिसकी माध्यिका ऊंची होगी; और जिसकी दाहिनी पूंछ वृद्धावस्था में कुदरती वजहों से होने वाली मौत तक जाती होगी।

मैं देखता हूं कि मौत को स्वीकार करने की बराबरी आंतरिक गरिमा से करने का चलन इधर कुछ ज़्यादा ही हो चला है। मैं मानता हूं कि हर चीज़ का अपना-अपना वक्त होता है - प्यार का वक्त, मरने का वक्त। और मेरी डोर जब खत्म होगी तो मुझे उम्मीद है कि मैं भी अपनी मौत का सामना अपने ढंग से शांति के साथ कर सकूंगा। लेकिन अधिकांश परिस्थितियों में तो मैं मौत को अंतिम शत्रु मानने वाले पदार्थवादी दृष्टिकोण का हिमायती ही रहूंगा। जो रोशनी बुझने के खिलाफ अपनी जंग जारी रखते हैं, उनके लिए मेरे मन में कोई दुराव नहीं है।

लड़ाई की तलवारें तो अनेक हैं लेकिन हंसी-ठट्ठे से ज़्यादा प्रभावी कोई नहीं। मेरे मित्रों की एक मीटिंग में मेरी मौत की घोषणा की गई और मैं अपनी ही श्रद्धांजली का मज़ा लेने से चूक गया। हुआ यह कि श्रद्धांजली मेरे एक करीबी दोस्त द्वारा लिखी जानी थी। (लेकिन मेरा वह दोस्त स्वयं एक सांख्यिकी-शास्त्री होने के नाते आंकड़ों के वितरण में मुझे बाईं ओर पाने के बारे में सोच नहीं सकता था। वह शंकित हुआ और उसने मेरी मौत की इस खबर की पुष्टि करना ही उचित समझा।) ज़रा सोचिए मेरे मुंह पर मार्क ट्वेन की सबसे मशहूर पंक्ति तकरीबन आ ही चुकी थी: 'मेरी मौत की खबरें अतिशयोक्तिपूर्ण हैं।'

(मनोहर नोतानी — एकलव्य के प्रकाशन स्रोत से संबद्ध)

स्टीफन जे. गूल्ड - हार्वर्ड विश्वविद्यालय (अमेरिका) में भू-विज्ञान एवं प्राणीशास्त्र के प्रोफेसर। जैव विकास और जीवाश्म के अध्ययन मे महारत। विभिन्न विषयों पर लगातार लेखन।

प्रयोग का मतलब दिए गए निष्कर्ष सिद्ध करना ही है क्या? गिलास में पानी चढ़ने के एक प्रयोग से खड़े किए गए हैं कुछ सवाल।

क्यों करें प्रयोग .....

● हृदयकांत दीवान

विज्ञान पढ़ाने में प्रयोगों के महत्व के बारे में बहुत कुछ कहा गया है। यह भी कहा जाता है कि विज्ञान सीखना प्रयोगों पर आधारित होना चाहिए और बच्चों को हम जो भी समझाते हैं उससे संबंधित प्रयोग करके सिखाना चाहिए।

इन मान्यताओं के चलते विज्ञान की किताबों में प्रयोग डाले गए हैं। पर आपने ध्यान दिया होगा कि प्रयोगों की भूमिका, प्रस्तुति व बाद में दी गई जानकारी में यह स्पष्ट कर दिया जाता है कि प्रयोगों में क्या होना है, उनके द्वारा क्या अवलोकन आएंगे और क्या निष्कर्ष निकलेंगे।

प्रयोग करते हैं, ताकि कराए गए अवलोकन ही आएं। उनका मकसद यह नहीं होता कि बच्चे किसी मुद्दे पर प्रयोग करके खुले रूप से और सावधानी से अवलोकन लें, जो उन्हें दिख रहा है उस पर विश्वास करें, उसके आधार पर तर्क करते हुए निष्कर्ष निकालने के प्रयास करें।

एक प्रयोग हवा पर

उदाहरण के लिए हम प्राथमिक शाला की पाठ्यपुस्तकों में पढ़ाए जाने वाले एक प्रयोग पर गौर करेंगे।

प्रयोग यह है: किसी थाली में बीचों-बीच एक मोमबत्ती जलाओ। फिर थाली में पानी डाल दो। जलती हुई मोमबत्ती पर सावधानी से कोई गिलास या बड़े चौड़े मुंह वाली बोतल ढंक दो। ध्यान से

देखो क्या होता है। थोड़ी देर में मोमबत्ती जलना बन्द कर देती है। गिलास में पानी भी चढ़ जाता है।

मोमबत्ती जलना क्यों बन्द कर देती है? पानी कितना चढ़ जाता है?

यह इसलिए होर्ता है क्योंकि बोतल की हवा में जो ऑक्सीजन है वह मोमबत्ती को जलने में सहायता करती है और खर्च हो जाती है। धीरे-धीरे बोतल की हवा का ऑक्सीजन वाला हिस्सा खत्म हो जाता है और मोमबत्ती जलना बन्द कर देती है। ऑक्सीजन के खत्म होने से बोतल में शून्यता आ जाती है और इसी शून्यता को भरने के लिए पानी ऊपर चढ़ जाता है। चूंकि हवा में ऑक्सीजन की मात्रा 1/5 है, इसलिए मोमबत्ती के बुझने पर गिलास में 1/5 हिस्से तक पानी चढ़ जाता है।

हवा का एक बड़ा भाग जलती हुई मोमबत्ती द्वारा प्रयोग में नहीं लाया जा सकता। यह 4/5 भाग (लगभग 70 प्रतिशत) नाइट्रोजन गैस का है।

यदि मोमबत्ती को कांच के बर्तन से न ढंका जाए तो वह जलती रहेगी क्योंकि उसे लगातार खुली हवा सेऑक्सीजन मिलती रह सकती है।

ज़ाहिर है इस प्रयोग को करने वाला छात्र जी-तोड़ मेहनत करके यह नतीजा ही निकालना चाहेगा कि गिलास में लगभग 1/5 ऊंचाई तक ही पानी चढ़ेगा। प्रयोग करने पर उसके वास्तविक अवलोकन कुछ भी हों वह निष्कर्ष में यही मानना चाहेगा कि गिलास में 1/5 हिस्से तक पानी चढ़ा। यानी वह अपने अवलोकनों को या तो 1/5 के आसपास का मान लेगा या अगर अवलोकन बहुत ही अलग आए तो उन्हें छिपाकर यही लिखेगा कि 1/5 हिस्से तक पानी चढ़ा।

खुद करके देखें

चाहें तो आप भी यह प्रयोग करके देखें। मोमबत्ती पर ढकने के लिए कांच के अलग-अलग आकार के बर्तनों का उपयोग भी करके देख सकते हैं। देखिए कि मोमबत्ती के बुझने पर गिलास में कितना पानी चढ़ता है। क्या बार-बार प्रयोग करने पर भी एक सी ऊंचाई तक पानी चढ़ता है?

मैंने जब अलग-अलग ऊंचाई की मोमबत्तियां लेकर प्रयोग किए तो हर बार एक जैसे अवलोकन नहीं आए। यही नहीं, बर्तन कितना बड़ा है या छोटा, उसका भी असर पड़ा। जैसे इतना ही काफी न हो, नीचे वाले बर्तन में पानी की मात्रा कितनी है, उसका भी असर दिखाई दिया। यह सब करते-करते और प्रयोग को ध्यान से देखने पर समझ में आया कि किताबों में

जैसा लिखा होता है, मामला उतना आसान है नहीं। ये कुछ बातें सामने आईं:

1. मोमबत्ती के साईज़, नीचे के बर्तन में पानी की मात्रा और ऊपर उल्टाकर रखे बर्तन के साईज़ - इन सबसे इस बात पर असर पड़ता है कि पानी कितना ऊपर चढ़ेगा।

2. जलने में पूरी-की-पूरी ऑक्सीजन खत्म नहीं होगी और मोम के जलने से जहां ऑक्सीजन खर्च होती है, वहां कार्बन-डाईऑक्साइड और पानी बनते भी हैं।

3. जब अंदर मोमबत्ती जल रही हो तो कभी-कभी बोतल के अंदर से बाहर की तरफ बुलबुले निकलते दिखाई देते हैं। किसी वजह से अंदर दबाव बढ़ रहा है, शायद अंदर का तापमान बढ़ने का भी कुछ असर होता होगा।

4. अगर यही प्रयोग बर्तन के अंदर अलग-अलग साईज़ दो मोमबत्तियां रखकर किया जाए तो कई बार पानी खूब ऊपर तक चढ़ जाता है - लगभग आधी ऊंचाई तक। अब इसका क्या कारण होगा?

प्रयोगों का मकसद क्या है?

अगर यह सच है कि गिलास में पानी 1/5 हिस्से ऊंचाई तक नहीं बल्कि लगभग आधी ऊंचाई तक चढ़ जाता है तो फिर किताबों में यह क्यों लिखा जाता रहा है कि पानी 1/5 ऊंचाई तक चढ़ता है? क्यों इस बात की जांच नहीं की गई है?

इसके पीछे जो कारण मुझे समझ में आता है वह यह है कि विज्ञान शिक्षा में प्रयोगों को, जानकारी पहुंचाने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए पाठों में ऊपरी तौर पर चिपका दिया जाता है। जैसे ऊपर वाले उदाहरण में मूल उद्देश्य तो यही है कि बच्चा यह याद रखे कि हवा में 1/5 भाग ऑक्सीजन है और 4/5 भाग नाईट्रोजन है। इस बात को स्थापित करने के लिए अगर कोई प्रयोग दिख गया जो कुछ-कुछ उस जानकारी से संबंधित है, तो बिना जांचे, बिना नापे उस प्रयोग को पाठ में डाल दिया।

हमारी किताबों में और कहां-कहां ऐसा हुआ है, यह ढूंढना चाहिए, और विज्ञान शिक्षण के दृष्टिकोण पर बुनियादी रूप से सोचना भी चाहिए। सोचना यह है कि जिन बातों को हम छात्रों को सत्य के रूप में बता रहे हैं उन्हें सिद्ध भर करने के लिए प्रयोग रखने से हम विज्ञान शिक्षण में प्रयोगों की उपयोगिता को खत्म तो नहीं कर रहे? ऐसा क्या किया जाए जिससे बच्चे, प्रयोगों के ज़रिए सावधानी से अवलोकन करना और ईमानदारी तथा विश्वास के साथ अपनी देखी बातों के आधार पर सोचना समझना सीख सकें?

यदि ऐसा नहीं हो तो आखिर कोई किसलिए करे प्रयोग?

हृदयकांत दीवान - एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम और प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम से संबद्ध।

***

1

3.

भ्रूण से जीव तक : मुर्गी के अंडे के अंदर चूज़े के विकास की विभिन्न अवस्थाएं - 1. 15 दिन बाद अंडे के अंदर की स्थिति। आंखे लगभग पूरी बन चुकी हैं। चोंच इतनी विकसित हो चुकी है कि खुल और बंद हो सकती है। 2. 17 दिन बाद - चूज़े का विकास लगभग पूरा हो चुका है। वह सांस लेने के लिए चोंच खोल और बंद कर सकता है, अंडे के बाहर से उसकी सांस लेने की आवाज़ सुनी जा सकती है। 3. 21 दिन बाद - चूज़े ने चोंच से अंडे का बाहरी खोल तोड़ दिया है। इसके बाद भी ज़रूरी नहीं कि चूज़ा तुरंत बाहर निकल आएगा, उसे इसमें एक घंटे से लेकर दो दिन का समय तक लग सकता है।

कैसे मिलते हैं गुण हमें

अरविंद गुप्त

जब किसी बच्चे का जन्म होता है तो उसे देखने वाले लोग हमेशा ऐसी बातें करते मिल जाएंगे-अरे .... ! इसकी नाक तो पिता से मिलती है और रंग बिल्कुल मां पर गया है .... । जब वह थोड़ा बड़ा होता

है तो लोग उसकी आदतों के बारे में टिप्पणी करते हैं - इसका गुस्सा तो बिल्कुल उन .... जैसा है, या फिर चलने, खाने-पीने, आदि का तरीका उन .. जैसा। करीब से जानने वाले लोग तो चाचा, दादा, मामा तक के कुछ गुण बच्चे में खोज निकालते हैं। हम शायद ही सोचते हों कि नए जन्मे बच्चे के पास पीढ़ियों के गुण कैसे आए।

इसका कारण है अनुवांशिकी - यानी गुणों का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जाना। यह होता है गुणसूत्रों के कारण। इसका भी पूरा का पूरा अपना एक चक्र है। आइए देखें कैसा।

कुछ दिनों पहले की बात है। बुलबुल के एक जोड़े ने मेरे घर में घोंसला बनाना शुरू किया। सुरक्षित ऊंचाई पर टंगे टेलीफोन के तार के सहारे उन्होंने एक सप्ताह के भीतर तिनकों का एक सुघड़ प्याला बनाया और बारी-बारी से उसमें बैठना शुरू किया। एक बार मैंने चुपके से उनके घोंसले में झांककर देखा - दो सुंदर अंडे घोंसले में रखे थे। 8-10 दिनों के बाद दिखाई दिया कि दोनों पक्षी काफी उत्तेजित होकर घोंसले के आसपास मंडरा रहे थे। पता चला कि अंडों में से दो नन्हें बच्चे निकल आए हैं। उनकी आंखें बंद थीं और शरीर नंगे। शीघ्र ही उनके माता-पिता ने उन्हें खिलाना शुरू किया और देखते-देखते बच्चे बड़े होने लगे।

वैसे देखा जाए तो यह कोई बड़ी घटना नहीं थी। इस प्रकार के जीवनचक्र हमारे चारों ओर लगातार चलते रहते हैं, किन्तु मेरे लिए यह कभी समाप्त न होने वाले उस विस्मयकारी नाटक का एक छोटा-सा दृश्यमात्र था जिसे हम जीवन कहते हैं। ज़रा सोचिए, करोड़ों वर्षों पूर्व पृथ्वी पर जीवन की शुरुआत हुई और शुरू हुआ जीवन और मृत्यु का यह क्रम जो अब तक अविरल गति से चला आ रहा है।

बुलबुल का ही उदाहरण लें। उन्हें कैसे पता चला कि घोंसला बनाने का समय आ गया है? प्याले के समान सुंदर घोंसला बनाना उन्हें किसने सिखाया? उन्होंने गौरेया जैसा बेतरतीब घोंसला क्यों नहीं बनाया? अंडों से उनके समान ही बच्चे क्यों निकले? अपने माता-पिता से बहुत भिन्न क्यों नहीं निकले? अचंभित कर देने वाली ये सब बातें उस प्रक्रिया का भाग हैं जिसे हम प्रजनन कहते हैं और जिसके कारण पृथ्वी पर निरंतर जीवन चल रहा है। आइए, इस प्रक्रिया को थोड़ा विस्तार से देखें।

गुणसूत्रों में छुपा राज़

प्रजनन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि संतान अपने माता-पिता के समान होकर भी उनसे कुछ भिन्न होती है। इस समानता - भिन्नता का राज़ छुपा है गुणसूत्रों में, जिन्हें अंग्रेज़ी में chrom-

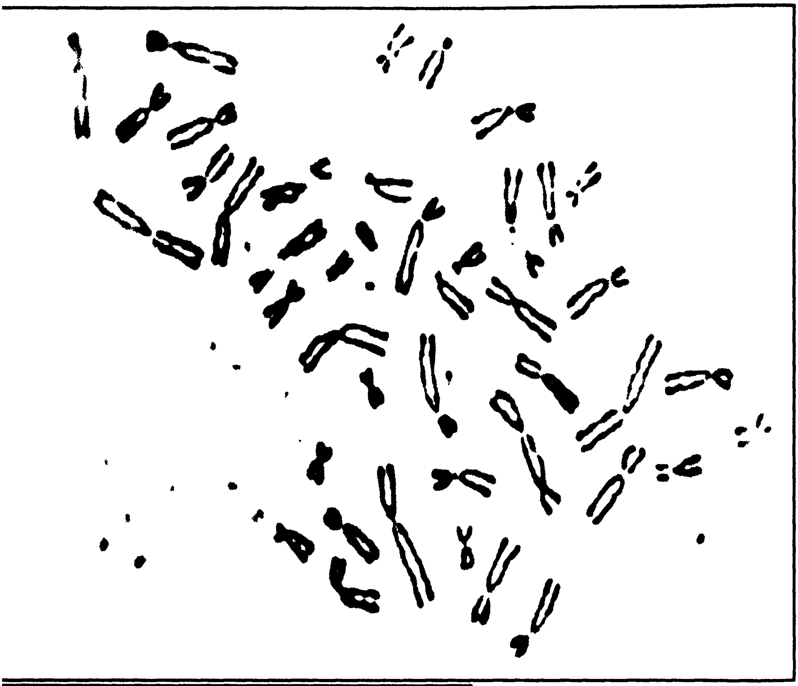

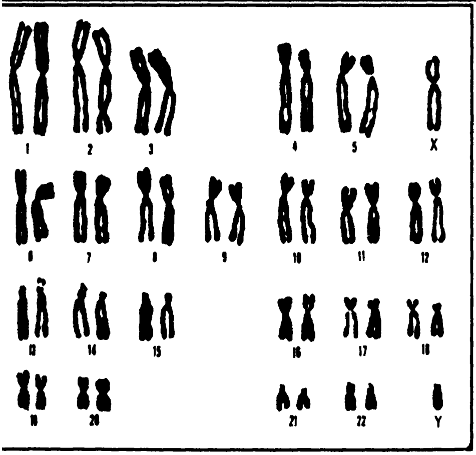

नर मनुष्य के गुणसूत्रों का फोटो: ऊपर के फोटो में गुणसूत्र दिख रहे हैं। नीचे के फोटो में इन्हीं गुणसूत्रों को जोड़ियों में क्रमवार रखकर दिखाया गया है। नर मनुष्य की माधारण कोशिका में 23 जोड़ी गुणसूत्र होते हैं - जिनमें मे एक जोड़ी लिंग गुणसूत्रों (नर में x और y) की होती है।

चेत्र: 1 नर मनुष्य के गुणसूत्र

osomes कहते हैं। गुणसूत्र एक रासायनिक पदार्थ के बने लम्बे धागों के समान होते हैं जिसका नाम है - डीऑक्सी राइबोज़ न्यूक्लिक एसिड या संक्षेप में डी.एन.ए.। यदि मुझसे पूछा जाए कि प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले रासायनिक पदार्थों में सबसे चमत्कारी, सबसे अद्‌भुत और जीवन के रंगमंच पर सबसे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने वाले पदार्थ कौन-से हैं? तो मैं तीन पदार्थों - डी.एन.ए., पानी और क्लोरोफिल के नाम सूची में रखूंगा और डी.एन.ए. को सबसे ऊपर का स्थान दूंगा। यह पदार्थ, जिसकी रासायनिक संरचना काफी जटिल है, उस अदृश्य पुल का काम करता है जिस पर से होकर एक पीढ़ी के गुण दूसरी पीढ़ी में जाते हैं। यानी गाय का बच्चा गाय के समान होता है - खरगोश के समान नहीं, मक्खी के अंडे से मक्खी ही निकलती है - मच्छर नहीं; नीम के बीज से नीम का ही पेड़ बनता है - पीपल का नहीं। बात सिर्फ यहीं तक नहीं रुकती। हम और आप की आवाज़, बालों का रंग, कद-काठी, आदि अपने-अपने माता पिता से मिलते हैं तो इसका रहस्य डी.एन.ए में ही छुपा है।

जंतु शरीर की इकाई

डी.एन.ए. और गुणसूत्रों के बारे में अधिक विस्तार से समझने से पहले यह ज़रूरी है कि हम उन इकाइयों की रचना समझ लें जिनसे सब जीवधारियों के शरीर बने होते हैं और जिनमें डी.एन.ए और गुणसूत्र पाए जाते हैं। इस इकाई को कोशिका (cell) कहते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि कोशिका में वह गुण होता है जो किसी भी निर्जीव वस्तु में नहीं पाया जाता। कोशिका में प्रजनन की क्षमता होती है - यानी वह पोषण ग्रहण कर सकती है और बढ़ती है। कालांतर में कोशिका का विभाजन होकर उससे दो कोशिकाएं बन जाती हैं। हम कह सकते हैं कि यदि हमारे शरीर में कहीं जीवन है तो वह प्रत्येक कोशिका में है।

जंतुओं के शरीरों में बहुत भिन्न-भिन्न प्रकार की छोटी-बड़ी कोशिकाएं पाई जाती हैं। कोशिका की रचना उसके काम पर निर्भर करती है। रक्त में पाई जाने वाली कोशिकाएं मस्तिष्क की कोशिकाओं से एकदम भिन्न होती हैं तो मस्तिष्क और फेफड़ों की कोशिकाओं में कोई समानता नहीं होती। आम-तौर पर कोशिकाएं आकार में इतनी छोटी होती हैं कि उन्हें केवल सूक्ष्मदर्शी से देखा जा सकता है। एक आलपिन के सिर पर हज़ारों कोशिकाओं को रखा जा सकता है। अपवाद स्वरूप ही कुछ कोशिकाएं बड़ी होती हैं। पक्षियों के अंडे में पाए जाने वाला पीला भाग एक कोशिका ही होता है। हां एक बात ज़रूर है, बाहर से देखने में कोशिकाएं चाहे जितनी भिन्न हों - बड़ी हों या छोटी, लंबी हों या गोल, शरीर के किसी भी भाग में पाई जाती हों, उनकी भीतरी बनावट में काफी समानता होती है।

डी.एन.ए. और अनुवांशिकी

प्रत्येक जंतु की कोशिकाओं में गुणसूत्रों की एक निश्चित संख्या पाई जाती है। कोशिका में ये गुणसूत्र केंद्रक के अंदर पाए जाते हैं। किसी जन्तु में इनकी संख्या

आसान नहीं है अध्ययन

जब हम कोशिका की रचना का विवरण पढ़ते हैं तो आमतौर पर यह धारणा बन जाती है कि कोशिका के विभिन्न अंगों को देखने के लिए केवल एक सूक्ष्मदर्शी की ही आवश्यकता है। लेकिन ऐसा नहीं है। कोशिका के विभिन्न अंगों को देखने और उनके कार्यों को समझने में कठिनाईयां आती हैं। सबसे पहले तो यह कि कोशिका का आकार बहुत छोटा होता है और उसे देखने के लिए शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी की आवश्यकता होती है। दूसरी कठिनाई यह है कि जीवद्रव्य, केन्द्रक, तथा अन्य अंग पारदर्शी होते हैं और इसलिए ये सरलता से दिखाई नहीं पड़ते। वैज्ञानिकों ने इसका उपाय रंजकों के रूप में ढूंढा है। रंजक, ऐसे पदार्थ होते हैं जो कोशिका के विभिन्न भागों के साथ रासायनिक क्रिया करके उन्हें रंगीन बना देते हैं जिससे उन्हें आसानी से देखा जा सकता है।

4 होती है, किसी में 16 तो किसी अन्य जन्तु में 60 तक। मनुष्य में यह संख्या 46 होती है। हमारे शरीर की प्रत्येक कोशिका में पाए जाने वाले इन 46 गुणसूत्रों में हमारी पूरी जन्मपत्री संकेतबद्ध की हुई होती है। इसका मतलब यह है कि इन गुणसूत्रों की वजह से हम मनुष्य के समान दिखाई देते हैं, इनकी वजह से हममें, हमारे माता-पिता के लक्षण होते हैं और इनकी वजह से हमारे शरीर की क्रियाएं मशीन की तरह चलती रहती हैं। यही नहीं, ये गुणसूत्र यह भी निर्धारित करते हैं कि हमारी अगली पीढ़ी कैसी होगीं। चित्र-1(पेज नं. 20) में मनुष्य के गुणसूत्र दिखाए गए हैं। यह चित्र बहुत शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी से लिया गया है और गुणसूत्र अपने वास्तविक आकार से कई हज़ार गुना बड़े दिखाए गए हैं।

प्रत्येक जोड़ी का एक गुणसूत्र पैतृक यानी पिता से आया हुआ और दूसरा मातृक यानी माता से आया हुआ होता है। डी.एन.ए. से बने इन लम्बे तंतुओं के अलग-अलग खंड अलग-अलग लक्षणों के लिए ज़िम्मेदार होते हैं। किसी खंड के कारण बालों का रंग निर्धारित होता है तो किसी खंड से आंखों का रंग तो किसी और से कद। इन खंडों को जीन (Gene) कहते हैं। प्रत्येक जोड़ी के दोनों गुणसूत्रों में एक स्थान पर एक ही लक्षण का जीन होता है। ज़ाहिर है कि संतान को प्रत्येक लक्षण के लिए दो जीन मिलते हैं - एक माता से और एक पिता से। इन दोनों की परस्पर क्रिया से यह निर्धारित होता है कि संतान में कौन-सा लक्षण दिखाई देगा। संतान को माता-पिता की ओर से लक्षणों का मिलना अनुवांशिकी कहलाता है।

अनुवांशिकी और प्रजनन के लिए मूलभूत ज़रूरत है कोशिका विभाजन - एक कोशिका से दो कोशिकाएं बनना। आइए देखें, कैसे-कैसे होता है कोशिका विभाजन।

कोशिका विभाजन

जब किसी कोशिका का विभाजन होकर दो नई कोशिकाएं बनती हैं तब प्रत्येक नई कोशिका की रचना उसकी मातृ कोशिका के समान ही होती है। उसमें मातृ कोशिका के ही समान कोशिका झिल्ली, केन्द्रक, माइटोकॉन्ड्रिया तथा अन्य अंग पाए जाते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि पुत्री कोशिकाओं में ठीक उतने ही, ठीक उसी प्रकार के गुणसूत्र पाए जाते हैं जितने और जिस प्रकार के मातृ कोशिका में होते हैं।

1. समसूत्री कोशिका विभाजन

कोशिका विभाजन के समय एक जटिल प्रक्रिया के द्वारा केन्द्रक में स्थित प्रत्येक गुणसूत्र खड़ी दिशा में विभाजित होकर दो भागों में बंट जाता है। इस प्रकार गुणसूत्रों की संख्या दुगनी हो जाती है। इसी अवधि में जीवद्रव्य और अन्य अंगों का विभाजन भी होता रहता है और जब तक यह प्रक्रिया पूरी होती है गुणसूत्र भी अलग-अलग हो जाते हैं।

इसे समसूत्री कोशिका विभाजन क्यों कहते हैं? सूत्र का अर्थ होता है धागा। गुणसूत्र धागों जैसे दिखते हैं। इसलिए अगर कोशिका विभाजन के बाद भी इन धागों की संख्या उतनी ही रहे जितनी पहले थी - तो उसे समसूत्री कोशिका विभाजन कहते हैं। यह प्रक्रिया चित्र-2 (पेज नं. 24) में दिखाई गई है। यह एक ऐसी कोशिका में दिखाई गई है जिसमें गुणसूत्रों की सामान्य संख्या - 6 यानी 3 जोड़ी होती है। चूंकि इस प्रकार के विभाजन के बाद गुणसूत्रों की संख्या में परिवर्तन नहीं होता, इसे समसूत्री कोशिका विभाजन कहते हैं।

सभी पौधों और जंतुओं में समसूत्री कोशिका विभाजन इसी प्रकार होता है - चाहे उनमें गुणसूत्रों की संख्या कितनी भी हो। कोशिकाओं में पाए जाने वाले गुणसूत्रों की सामान्य संख्या को द्विगुणित (Diploid) या 2n कहते हैं।

जैसे कि मनुष्य की कोशिका में 23 जोड़ी (2×23) गुणसूत्र होते हैं और समसूत्री कोशिका विभाजन के बाद बनी दोनों कोशिकाओं में भी, प्रत्येक में 23 जोड़ी (2×23) गुणसूत्र होंगे।

2. अर्धसूत्री कोशिका विभाजन

प्रजनन के संदर्भ में यहां एक दिलचस्प प्रश्न से हमारा सामना होता है। प्रजनन की प्रक्रिया में नर की एक कोशिका (शुक्राणु) और मादा की एक कोशिका (अंडाणु) के मेल से संतान बनती है। प्रश्न यह है कि यदि अंडाणु और शुक्राणु में भी 2n गुणसूत्र होते हैं तो अगली पीढ़ी में गुणसूत्रों की संख्या 4n और उसकी अगली पीढ़ी में 8n क्यों नहीं हो जाती है?

जब अंडाणु और शुक्राणु बनते हैं तब एक विशेष प्रकार का कोशिका विभाजन होता है, जिसके द्वारा गुणसूत्रों की संख्या ठीक आधी हो जाती है। उदाहरण के लिए मनुष्य के शुक्राणु और अंडाणु में गुणसूत्रों की संख्या 46 के स्थान पर 23 होती है। इस संख्या को अगुणित (Haploid) या n कहते हैं।

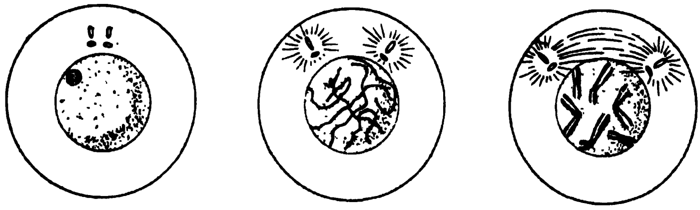

1. कोशिका के केंद्रक के अंदर गुणसूत्र गट्ठर के रूप में मौजूद। इस स्थिति में वे अलग-अलग नहीं दिखते। केंद्रक के बाहर कोशिका द्रव में एक दूसरे के पास-पास दो छोटी-छोटी नलाकार रचनाएं - जिन्हें सेंट्रिओल कहते हैं।

2. सेंट्रिओल एक दूसरे से दूर जाने लगते हैं। गुणसूत्र लंबे पतले धागों जैसे दिखने लगते हैं। कुल 3 जोड़ी यानी 6 गुणसूत्र।

3. सेंट्रिओल और दूर जाते हुए। इन नलाकार रचनाओं को जोड़ते हुए धागे बनने की शुरुआत। गुणसूत्र मोटे छड़नुमा से बन जाते हैं। हर गुणसूत्र अपनी-अपनी एक-एक नकल छवि बना लेता है। इसलिए प्रत्येक गुणसूत्र की दो-दो शाखाएं दिखने लगती हैं-जो बीच में से जुड़ी होती हैं।

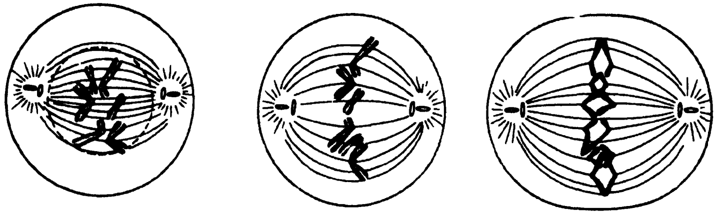

4. सेंट्रिओल केंद्रक के दोनों तरफ पहुंच जाते हैं। इनके बीच धागे पूरी तरह से खिंच जाते हैं। केंद्रक की झिल्ली ओझल होने लगती है। गुणसूत्र बीच की तरफ आने लगते हैं।

5. केंद्रक की झिल्ली पूरी तरह से खत्म हो जाती है। सेंट्रिओल से निकलने वाली धागेनुमा रचनाएं हरेक गुणसूत्र के साथ जुड़ जाती हैं। सब गुणसूत्र बीच में आ जाते हैं और एक तकलीनुमा रचना बन जाती है।

6. गुणसूत्र बीच में से अलग-अलग होकर दोनों तरफ के सेंट्रिओल की ओर जाने लगते हैं।

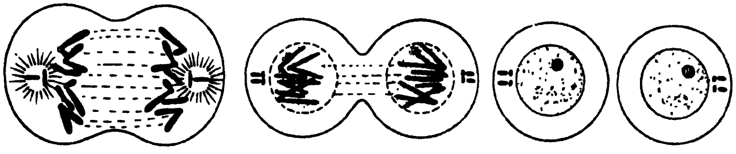

7. गुणसूत्रों के दोनों समूह अपने-अपने ध्रुवों (सेंट्रिओल) के पास पहुंच जाते हैं। कोशिका विभाजन की शुरुआत।

8. दोनों गुणसूत्रों के समूहों के चारों तरफ नई केंद्रक झिल्लियां बनने लगती हैं। गुणसूत्र पतले और लंबे होने लगते हैं। दोनों सिरों के सेंट्रिओल अपनी एक-एक नकल और बना लेते हैं। कोशिका विभाजन अंतिम चरण में।

9. नई बनी कोशिकाओं में केंद्रक के चारों तरफ झिल्ली पूरी तरह से बन जाती है। गुणसूत्र फिर से एक गट्ठर जैसा बना लेते हैं। कोशिका विभाजन पूर्ण।
प्रत्येक कोशिका में 3 जोड़ी यानी 6 गुणसूत्र। इसलिए इसे समसूत्री कोशिका विभाजन कहते हैं।

चित्र: 2 समसूत्री कोशिका विभाजन

इस प्रकार के कोशिका विभाजन को अर्धसूत्री कोशिका विभाजन कहते हैं। यानी कि इसमें धागों की संख्या आधी हो जाती है - इसलिए अर्धसूत्री।

चित्र-3, (पेज नं. 26) में अर्धसूत्री विभाजन की प्रक्रिया दिखाई गई है। यह विभाजन की प्रक्रिया भी बहुत व्यवस्थित होती है और प्रत्येक जोड़ी का एक-एक गुणसूत्र एक-एक पुत्री कोशिका में चला जाता है। जब अंडाणु और शुक्राणु का मेल होता है तब गुणसूत्रों की संख्या फिर से दुगुनी हो जाती है।

लैंगिक प्रजनन

जब शुक्राणु का मेल अंडाणु से होता है तब एक नए जंतु की शुरूआत भ्रूण के रूप में होती है। इस प्रकार के प्रजनन को लैंगिक प्रजनन कहते हैं क्योंकि इसमें नर और मादा दोनों लिंगों के जंतुओं का होना ज़रूरी होता है।

आमतौर पर शुक्राणु छोटे लम्बे और गतिशील होते हैं जब कि अंडाणु आकार में बड़े गोल और स्थिर होते हैं। शुक्राणु को अंडाणु तक कैसे पहुंचाया जाए? यह प्रक्रिया अलग-अलग जंतुओं में बहुत ही अलग-अलग तरह से होती है। पानी में रहने वाले अधिकांश बिना रीढ़ की हड्डी वाले जंतु अरबों की संख्या में शुक्राणु बनाते हैं और उन्हें पानी में छोड़ देते हैं' शुक्राणु आकार में बहुत छोटे होते हैं कि इसके विपरीत अंडाणु तुलनात्मक दृष्टि से बड़े होते हैं और उनमें भोजन पदार्थ इकट्ठा होता है। इन जंतुओं में अंडाणु कम यानी हज़ारों की संख्या में बनते हैं और इन्हें भी पानी में छोड़ दिया जाता है। शुक्राणु पानी में इधर-उधर तैरते रहते हैं और उनकी संख्या बड़ी होने के कारण कोई-न-कोई शुक्राणु किसी न किसी अंडाणु तक पहुंच ही जाता है। फिर यह शुक्राणु अपनी पूंछ बाहर छोड़ देता है और अंडाणु के भीतर धंस जाता है। जब अंडाणु और शुक्राणु के केन्द्रक आपस में मिल जाते हैं तब एक नए जंतु या भ्रूण की शुरुआत होती है। अंडाणु और शुक्राणु के मेल की इस क्रिया को निषेचन कहते हैं।

ज़मीन पर रहने वाले जंतु अपने अंडाणु-शुक्राणु को ज़मीन पर तो नहीं छोड़ सकते। उनमें निषेचन कुछ अन्य तरीकों से होते हैं।

नर और मादा मेंढक (और उनके वर्ग के अन्य जंतु) प्रजनन के समय पानी में चले जाते हैं। पहले मादा अपने

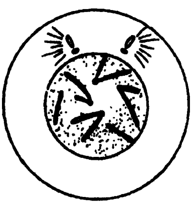

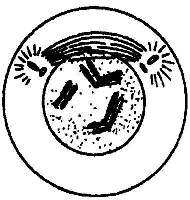

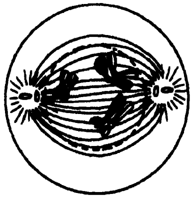

1. तीन जोड़ी गुणसूत्र अलग-अलग बिखरे लंबे-लंबे तंतुओं जैसे दिखने लगते हैं। गुणसूत्रों में दो-दो शाखाएं नहीं दिख रही परंतु ऐसे सबूत मिले हैं कि इस स्थिति में प्रत्येक गुणसूत्र अपनी एक नकल बना चुका है।

2. एक जैसे गुणसूत्र एक-दूसरे के पास आ जाते हैं और जोड़ियां बना लेते हैं। गुणसूत्र छोटे और मोटे हो जाते हैं।

3. प्रत्येक गुणसूत्र की नकल (प्रतिकृति) भी स्पष्ट दिखने लगती है। केंद्रक की झिल्ली ओझल होने लगती है।

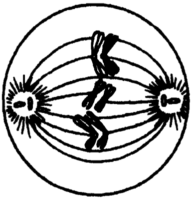

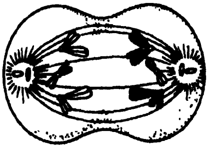

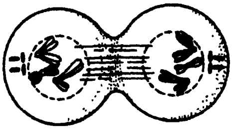

4. तंतुनुमा धागों से जुड़ी गुणसूत्रों की प्रत्येक जोड़ी बीच में आ जाती है और तकलीनुमा रचना बन जाती है।

5. गुणसूत्र और उसकी प्रतिकृति एक दूसरे से अलग नहीं होते - परंतु प्रत्येक जोड़ी में से एक-एक गुणसूत्र अलग-अलग ध्रुवों की तरफ जाने लगते हैं।

6. नए केंद्रक बन जाते हैं जिनमें 3 जोड़ी गुणसूत्रों की जगह सिर्फ 3 गुणसूत्र हैं। गुणसूत्र और उसकी प्रतिकृति अभी भी साथ-साथ हैं।

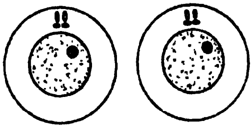

7.

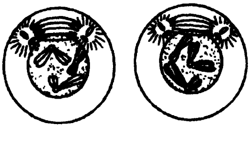

8.

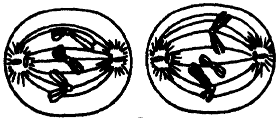

9.

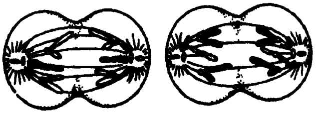

10.

11.

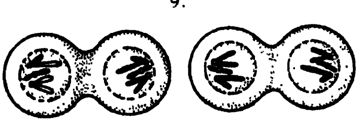

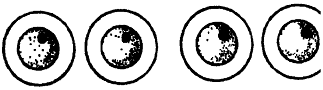

12.

7-12. गुणसूत्रों की और प्रतिकृतियां (नकल) नहीं बनती। समसूत्री कोशिका विभाजन की तरह इन दो कोशिकाओं की चार कोशिकाएं बन जाती हैं। प्रत्येक कोशिका में सिर्फ 3 गुणसूत्र होते हैं। इसीलिए इसे अर्धसूत्री कोशिका विभाजन कहते हैं।

चित्र: 3 अर्धसूत्री कोशिका विभाजन

मैराथन दौड़

मनुष्य के शुक्राणुओं के सूक्ष्मतम आकार को देखते हुए एक शुक्राणु को अंडाणु तक पहुंचने के लिए उतनी दूरी तय करनी पड़ती है जितनी एक स्वस्थ मनुष्य को बिना रूके 100 किलोमीटर दौड़ने के लिए करनी पड़ेगी।

अंडाणुओं को पानी में छोड़ देती है और फिर नर अपने शुक्राणु इन अंडाणुओं पर छोड़ता है। शुक्राणुओं की संख्या करोड़ों में होने के कारण हर अंडाणु का निषेचन लगभग निश्चित होता है। इसके बाद नर और मादा संतान की चिंता किए बिना अपने-अपने रास्ते चले जाते हैं। इन भ्रूणों में से अधिकांश मौत का शिकार हो जाते हैं। सिर्फ 10-20 प्रतिशत ही वयस्क हो पाते हैं। अधिकांश मछलियां भी इसी प्रकार प्रजनन करती हैं।

कुछ बिना रीढ़ की हड्डी वाले जंतुओं (कीट) और कुछ रीढ़ की हड्डी वाले जंतुओं (सांप, छिपकली, पक्षी, स्तनधारी) में निषेचन को सुनिश्चित करने के लिए शुक्राणुओं को सीधे मादा के शरीर में पहुंचाने के तरीके हैं। मादा अंडाणुओं को अपने शरीर में ही रख लेती है और संभोग क्रिया के द्वारा नर शुक्राणुओं को उसके शरीर में पहुंचा देता है। इस प्रकार भ्रूण सुरक्षित भी रहते हैं और अंडाणु कम संख्या में पैदा करने पड़ते हैं। किन्तु शुक्राणुओं का बड़ी संख्या में बनना अभी भी ज़रूरी होता है। मनुष्य का ही उदाहरण लें तो हम देखते हैं कि मादा में एक बार में प्राय: एक ही अंडाणु बनता है किन्तु एक बार में नर, मादा के शरीर में जो वीर्य छोड़ता उसमें शुक्राणुओं की संख्या लगभग 10 करोड़ होती है। मादा के शरीर में पहुंचते ही शुक्राणुओं में अंडाणु तक पहुंचने की दौड़ शुरू हो जाती है।

कुछ जंतुओं के अंडाणु कुछ ऐसे रसायन छोड़ते हैं जिनके कारण शुक्राणु उनकी ओर आकर्षित होते हैं। इससे निषेचन सुनिश्चित हो जाता है। अन्य जंतुओं में अंडाणु और शुक्राणु इतनी संख्या में पैदा किए जाते हैं कि बिना रसायन के भी कुछ शुक्राणु प्रत्येक अंडाणु तक पहुंच ही जाते हैं।

यद्यपि कई शुक्राणु एक साथ अंडाणु तक पहुंच जाते हैं किन्तु यह मुनासिब नहीं होता कि एक से अधिक शुक्राणु एक अंडाणु को निषेचित करे। (ऐसा प्रयोगशाला में किया जा सकता है किन्तु एक से अधिक शुक्राणुओं से बना भ्रूण जीवित नहीं रहता।) जैसे ही अंडाणु के पास पहुंचने वाला पहला शुक्राणु उसे छूता है, अंडाणु की बाहरी झिल्ली का ऋणात्मक आवेश एकदम धनात्मक हो जाता है।

इस धनात्मक आवेश के रहते चाहे जितने शुक्राणु, अंडाणु के पास पहुंच जाएं, वे उसे छू नहीं सकते। यह धनात्मक आवेश कुछ ही समय तक रहता है और इतने समय में अंडाणु के चारों ओर एक

ऐसी परत बन जाती है जो शेष शुक्राणुओं का अंडाणु से मिलने का रास्ता हमेशा के लिए बंद कर देती है। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, शुक्राणु के × और अंडाणु के × मिलकर भ्रूण में गुणसूत्रों की संख्या फिर से 2× हो जाती है और यहां से एक नए जंतु की शुरूआत होती है। भ्रूण का विभाजन होकर एक कोशिका से दो कोशिकाएं बनती हैं और फिर दो से चार, चार से आठ, आठ से सोलह और इस प्रकार लाखों कोशिकाएं बनती जाती हैं। ये सारी प्रक्रिया समसूत्री विभाजन से होती हैं। जैसे-जैसे कोशिकाएं बनती जाती हैं, वे जंतु के शरीर में अपना स्थान ग्रह‍ करती जाती हैं और उनकी रचना भी उस अंग के अनुसार होती है जिस अंग को वे बनाती हैं। इस प्रक्रिया को परिवर्धन कहते हैं।

परिवर्धन के बारे में पढ़ते समय एक और सवाल हमारे सामने आ जाता है। लगभग सभी जंतुओं के भ्रूण एक जैसे दिखाई पड़ते हैं। फिर इनसे इतने भिन्न-भिन्न दिखाई देने वाले जंतु कैसे बन जाते हैं?

इस प्रश्न का उत्तर भी डी.एन.ए. की विस्मयकारी रचना में छुपा है। गुणसूत्रों में लिपिबद्ध किए हुए निर्देशों के अनुसार जंतु का शरीर बनता जाता है। ज़ाहिर है कि मछली के गुणसूत्रों वाले भ्रूण से मछली और मुर्गी के गुणसूत्रों वाले भ्रूण से मुर्गी बनेगी। चित्र-5 में यह दिखाया गया है कि प्रारंभिक अवस्थाओं में एक समान दिखने वाले भ्रूणों में किस प्रकार धीरे-धीरे अंतर आता जाता है।

अब आप सोचिए कि अगर प्रजनन समसूत्री कोशिका विभाजन द्वारा होता तो क्या होता? एक बात तो हमने पहले ही देख ली है कि लैंगिक प्रजनन में ऐसा होना संभव नहीं है क्योंकि उससे हर बार प्रजनन होने पर गुणसूत्रों की संख्या दुगुनी हो जाएगी। परन्तु अलैंगिक प्रजनन में तो समसूत्री कोशिका विभाजन संभव है और कई जीव-जंतुओं खासतौर पर पेड़-पौधों में होता भी है।

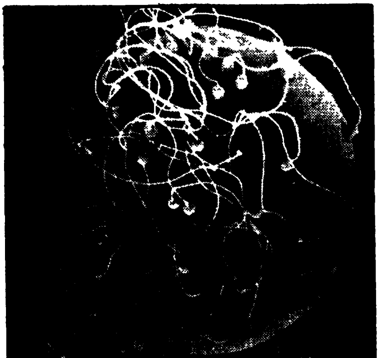

चित्र: 4. अंडाणु का फोटो: एक समुद्री जीव का अंडाणु। उसकी ओर आकर्षित कई शुक्राणु। इनमें से कोई एक ही अंडाणु को निषेचित करेगा।

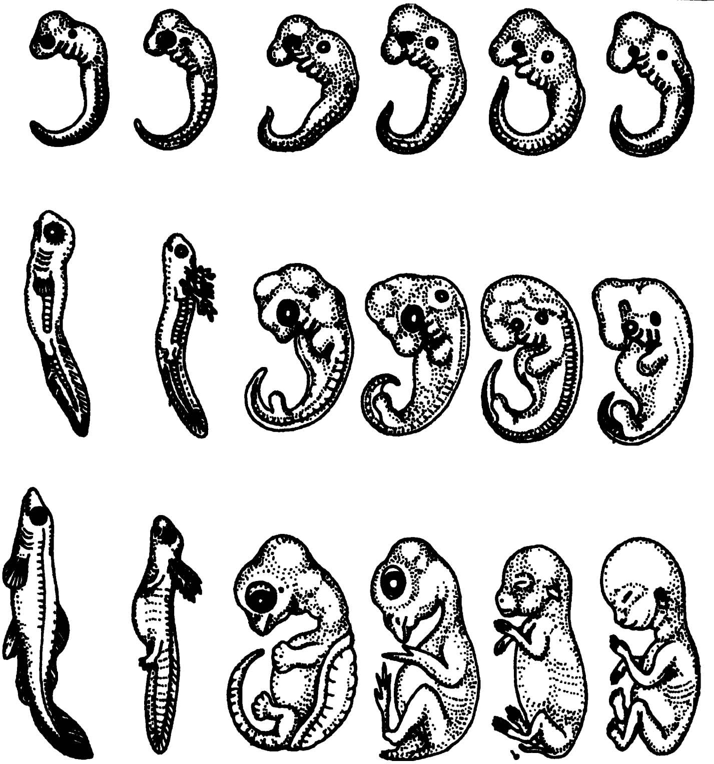

रीढ़धारी प्राणियों के भ्रूण की तीन अवस्थाओं के बीच की तुलनाः 1. पहली अवस्था में मछली, सरीसृप, पक्षी और स्तनधारी सबके भ्रूण एक जैसे दिखते हैं। 2. दूसरी अवस्था में मछली और मेंढक के समान प्राणी के भ्रूण अलग दिखने लगते हैं, पर अन्य भ्रूण अभी भी एक जैसे। गलफड़ों और पूंछ की वजह से यह अंतर स्पष्ट नज़र आता है। 3. तीसरी अवस्था आते-आते प्रत्येक भ्रूण में उसकी अपनी प्रजाति की विशेषताएं दिखने लगती हैं।

चित्रः 5 भ्रूणों की विभिन्न अवस्थाएं

समसूत्री कोशिका विभाजन में नई कोशिका एकदम मातृ-कोशिका जैसी होती है इसलिए संतान सदा एकदम माता-पिता जैसी होगी। इस संसार के सब जीव अगर इसी तरह के अलैंगिक प्रजनन से पैदा हुए होते तो शायद हमें वह विविधता देखने को नहीं मिलती जो आज चारों तरफ फैली हुई नज़र आती है।

किसका खून

बोलचाल की भाषा में अक्सर माता-पिता कहते हैं कि उनके बच्चे की रगों में उनका खून दौड़ रहा है। किन्तु खून का आनुवांशिकी से कोई संबंध नहीं होता। खून तो हर व्यक्ति का अपना ही होता है, उसे पूर्वजों से नहीं मिलता। हां, यदि माता-पिता कहें कि हमारे बच्चे के शरीर में हमारे गुणसूत्र काम कर रहे हैं तो वे ज़्यादा सही होंगे।

संतान को माता-पिता की ओर से लक्षणों का मिलना अनुवांशिकी कहलाता है। वैज्ञानिकों ने पौधों और जंतुओं की आनुवांशिकी का काफी अध्ययन किया है और इसके फलस्वरूप जीवशास्त्र की एक नई शाखा आनुवांशिकी विज्ञान विकसित हुई है।

मनुष्य की संतान मनुष्य जैसी होते हुए भी अलग होती है, कुत्ते के कोई भी दो पिल्ले या बिल्ली के बच्चे एकदम एक जैसे नहीं होते।

इस विविधता के पीछे एक बहुत बड़ा कारण लैंगिक प्रजनन और अर्धसूत्री कोशिका विभाजन का तरीका है - जिसमें अंडाणु और शुक्राणु बनते समय, जिस तरह से यह विभाजन की प्रक्रिया होती है उसमें नए गुणसूत्र अपने मातृ-पैतृक गुणसूत्रों से थोड़ा-सा अंतर लिए होते हैं। और फिर आधे गुणसूत्र माता और आधे पिता से आने के कारण - संतान में आने वाले गुण इन में से किसी में से भी आ सकते हैं - जिससे विविधता की संभावना इतनी बढ़ जाती है कि कोई भी दो बच्चे एकदम एक जैसे हों ऐसा अभी तक तो नहीं देखा गया है।

(अरविंद गुप्ते – प्राणीशास्त्र के प्राध्यापक, होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध)

* * *

मदद चाहिए तो ...

वैसे तो मगर के बच्चों के पास भी अंडे का खोल तोड़ कर बाहर आने के लिए एक दांत होता है। लेकिन इसके बावजूद खोल तोड़ने में यदि उन्हें कोई दिक्कत आ जाए तो परेशान होने की बात नहीं है। मादा मगर यानी मां, मुंह में अंडे रख हल्के से दबा कर खोल चटका देती है, बाकी तो बच्चे खुद कर ही सकते हैं, मतलब बाहर आना।

अनुभव, शिक्षक के धैर्य की परीक्षा का .....

कितनी स्वतत्रता मिले बच्चों को?

● मार्गरेट के. टी.

ये अनुभव कर्नाटक में काम करने वाली एक शिक्षक-प्रशिक्षिका के हैं। वे उस समय रायचूर की 'समूह' नाम की संस्था के साथ काम कर रही थीं। शिक्षक-प्रशिक्षण के अलावा वे स्कूल जाने वाले बच्चों के लिए अतिरिक्त या पूरक-स्कूल व कुछ अनौपचारिक-स्कूल भी चला रही थीं। अतिरिक्त-स्कूल उन बच्चों को शिक्षा में मदद देने के लिए हैं जिनके घर पर यह मदद सम्भव नहीं है।

कुण्टीग्रामा बंगलौर के पास एक झोपड़पट्टी है। यहां एक अनौपचारिक स्कूल है। प्रशिक्षिका रायचूर की शिक्षिकाओं को वहाँ प्रशिक्षण के लिए ले गई। इस केन्द्र पर आने वाले बच्चे ऐसे परिवारों से हैं जिनमें पढ़ने-लिखने का लम्बा इतिहास नहीं है। उनमें से कई खुद भी स्कूल जाना छोड़ चुके हैं और उन्हें जितनी इच्छा सीखने के खेलों में शामिल होने की है उतनी ही तीव्र इच्छा मनमानी करने की है।

वैसे भी कक्षा में बच्चों को कितनी स्वतंत्रता देना चाहिए और कितनी दी जा सकती है, जैसे सवाल बहुत उलझे हुए होते हैं। मार्गरेट के. टी. की इस रिपोर्ट में इस उलझन के बारे में एक राय हमारे सामने आएगी और यह बात भी कि बच्चे कच्चे घड़े नहीं होते और न ही बहुत सरल। वे अपने अनुभवों के अनुसार ढले होते हैं। उनके साथ काम करने का मतलब है - आपके सूझबूझ व धैर्य की अपूर्व परीक्षा। पर सीखना तो तभी होता है जब बच्चों को खुलेपन व मज़े का अहसास हो। खैर बाकी बातें रिपोर्ट पढ़कर देखते हैं।

कुण्टीग्रामा स्कूल

यहां छोटे-बड़े मिलाकर कुल 25 बच्चे हैं। स्कूल चलाने का काम वृथा और थाय्यमा करती हैं। बच्चों में स्कूल आने और सीखने में रुचि दिखी। वृथा और थाय्यमा बच्चों पर ध्यान देती हैं, मेहनत से काम करती हैं और बच्चों के प्रति संवेदनशील हैं। ये दोनों समय-समय पर बच्चों के घर भी जाती हैं, उनके माता-पिता से बातचीत करती हैं और जो बच्चे नियमित रूप से स्कूल नहीं आते उन्हें ले कर आती हैं। इस स्कूल में आने वाले बच्चों के परिवार ऐसी जगह रहते हैं जहां आसपास के घरों का कचरा फेंका जाता है। ये इलाका चट्टानों वाला है और इन परिवारों के पास मकान तो क्या ठीक-ठाक झोपड़ियां भी नहीं हैं। सब लोग टेंट जैसे घरों में रहते हैं। घर में फर्श नाम की कोई चीज़ नहीं है, बस एक मोटा-सा कपड़ा बिछा है, जिसके ऊपर बांसों से टिकी टीन की छत है।

ये लोग ज़्यादातर बाल्टियों की मरम्मत करते हैं और कचरा बीनते हैं। कचरे में से बीन-बीन कर कुछ हद तक उपयोगी चीज़ें निकाल कर ये अपना गुज़ारा करते हैं। पहले ये लोग एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहते थे। लेकिन अब यहां स्थाई रूप से बस गए हैं। उनके बच्चे किसी और स्कूल में नहीं जाते – दिन भर घूमते हैं, कचरा बीनते हैं और भीख मांगते हैं। वैसे, बच्चे काफी होशियार और उद्यमी हैं।

17 मई 1991

प्रार्थना बहुत अच्छी हुई। उसके बाद बच्चों को खेलने का सामान देकर छोड़ दिया। इसको लेकर काफी गड़बड़ हुई क्योंकि बच्चों को कोई विशेष निर्देश नहीं

दिए गए थे कि उन्हें सामग्री का उपयोग कैसे करना है और उसके साथ क्या करना है। यह सामान ऐसा था जिसमें बच्चे खेलते भी और खेलने के साथ-साथ सीखते भी। इस तरह उन्हें खेलने की पूर्ण स्वतंत्रता तो थी पर यह स्वतंत्रता देने का एक गलत तरीका था। शिक्षिकाएं बच्चों के व्यवहार को संतुलित नहीं बना पा रही थीं। उन्हें जो चाहे करने से भी नहीं रोक रही थीं। यह स्वतंत्रता नहीं उद्दण्डता थी। खिलौने तोड़े जा रहे थे। किसी को मालूम नहीं था उनसे खेलना कैसे है। बड़े बच्चे छोटे बच्चों पर रौब मार रहे थे। शिक्षिकाओं को मालूम नहीं था कि उनका क्या करें। अगर उन्हें सज़ा दें तो वे छोटे बच्चों का स्कूल आना भी बंद कर देते थे। उनसे डर कर शिक्षिकाएं उन्हें जो चाहे वह करने दे रही थीं।

मैं बैठकर कुछ देर तक देखती रही और सोचती रही - इतनी गड़बड़ है, कहां से शुरू करूं? मेरे साथ रायचूर की आठ शिक्षिकाएं भी आई हुई थीं। उनका हाल भी मेरे जैसा था। मेरे पूछने पर अच्चपा ने कहा कि कक्षा को नियंत्रित

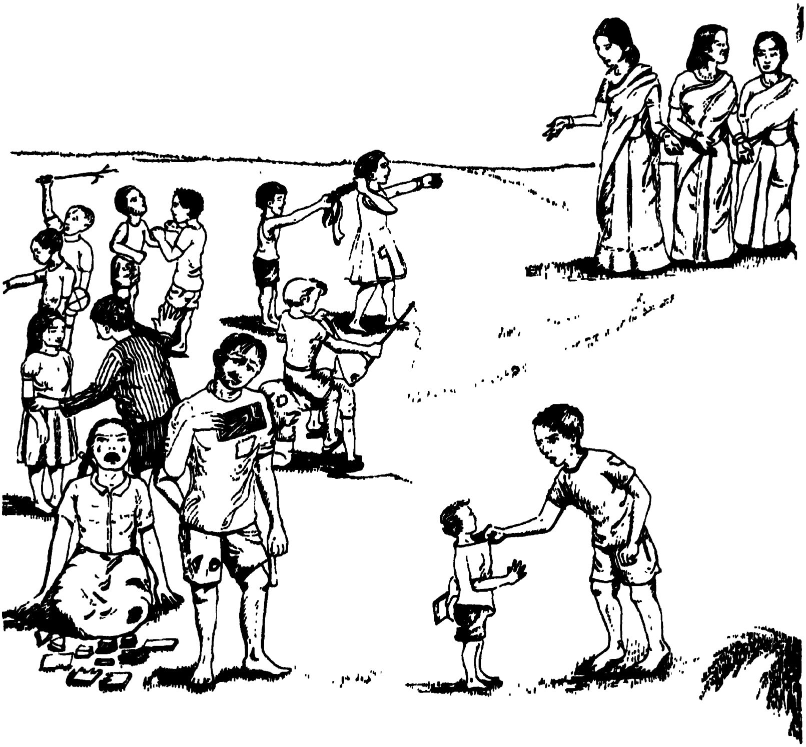

करने की ज़रूरत है लेकिन वे स्पष्ट रूप से नहीं बता पाईं कि यह सब कैसे करें। कक्षा में बाल्टियां, चटाई आदि थीं जिनका कोई उपयोग नहीं हो रहा था, वे बस कक्षा में यूं ही बिखरी पड़ी थीं।

मैंने सब से पहले तो बच्चों को खाने के लिए घर भेज दिया और फिर बिखरी चीज़ों को हटाया, जिससे घिचपिच कम हो गई और जगह खुल गई। इसके बाद हम सब ने मिलकर अलग-अलग गतिविधियों के लिए अलग-अलग स्थान तय किए। गुड़िया से खेलने, ब्लॉक से खेलने, चित्र बनाने व रंगने, पढ़ने-लिखने आदि के लिए अलग-अलग जगह। इन स्थानों को पर्दों से अलग-अलग बांट दिया गया। हमने कई तरह से विभाजन किया और कमरे में लगे आलों वगैरह को देखकर हर गतिविधि के लिए उपयुक्त जगह चुन ली। इस तरह 6 कमरे बनाए गए-

1. छोटे बच्चों के खेलने के लिए गुड़िया वगैरह।
2. छोटे बच्चों के लिए खिलौने बनाने की चीज़ें।
3. थोड़े बड़े बच्चों के लिए चीज़ें बनाने के खिलौने और ब्लॉक।
4. बड़े बच्चों के लिए चीज़ें बनाने के खिलौने।
5. बड़े बच्चों के लिए पढ़ने-लिखने की सामग्री, थोड़े छोटे ब्लॉक आदि।
6. बाहर के इलाके में रेत का गड्ढा (सैंड पिट) जिसमें छोटे बच्चे रेत से खेल सकें, रेत से चीज़ें बना सकें और बड़े ब्लॉक चीज़ें बनाने के लिए (रेत का गड्ढा बनाया जाना था और ब्लॉक खरीदे जाने थे)।

जगह को व्यवस्थित करने के बाद खिलौनों को देखा। वहां ज़रूरत से ज़्यादा खिलौने रखे गए। सामग्री के बंटवारे से बच्चों को समूहों में बांटने का भी हमें आधार मिल गया। जब बच्चे खाना खाकर वापस आए तो उन्हें मैदान में खड़ा होने को कहा गया और कुछ भी शुरू करने से पहले उनसे नियमों की बातचीत की गई।

सबसे पहले पूछा गया कि, वे स्कूल क्यों आए हैं? जवाब था - सीखने। उनसे कहा गया, अगर उन्हें सीखना है तो नियम मानने होंगे। मनमर्ज़ी करने से झगड़े होंगे और वे सिर्फ लड़ना और चीज़ें तोड़ना सीखेंगे और खुश भी नहीं होंगे। ये सब उन्हें ठीक लगा और वे आगे की बात सुनने के लिए तैयार हो गए। मैंने उन्हें नियम बताए:

(क) अगर तुम्हें सीखना है और मुझे सिखाना है तो तुम्हें वही करना होगा जो मैं कहूं।
(ख) सभी बच्चों को छोटे-छोटे समूहों में बांट देंगे, हर समूह की कक्षा में अपनी जगह होगी। हर बच्चे को व समूह को उनके लिए बनी जगह पर ही रहना होगा।
(ग) हर समूह अपने उपयोग के लिए आवश्यक सामग्री लेगा व जहां से सामग्री लेगा उसे पुनः वहीं रख देगा।

यह बात बड़े बच्चों को अच्छी नहीं लगी पर क्योंकि उन्होंने कहा था वे

सीखना चाहते हैं इसलिए वे कुछ कह नहीं सके। अब बड़े बच्चों को कक्षा में लाया गया व सब कुछ दिखाने के बाद उन्हें 4, 5 या 6 नंबर की जगह में से चुनने को कहा गया। इनमें चीज़ें, खिलौने, चित्र बनाने व रंग भरने का सामान व छोटे आकारों के ब्लॉक थे। उन्हें इन तीनों में से ही पसंद की गतिविधि चुननी थी। पहले सबसे बड़े दोनों बच्चों (प्रकाश और वेंकटेश) ने कहा वे कुछ नहीं करना चाहते।

मैंने कहा यह तुम्हारी मर्ज़ी है। अगर तुम कुछ नहीं करना चाहते तो मत करो। इस समूह के बाकी बच्चों में से दो ने चीज़ें बनाने वाले खिलौनों से और एक ने ब्लॉक से खेलना तय किया। इस पर बड़े बच्चों ने उनसे कहा कि वे भी न खेलें। मैंने उन्हें कहा कि अगर वे चाहें तो चुपचाप बैठ सकते हैं लेकिन उन्हें अन्य बच्चों को रोकने का कोई अधिकार नहीं है।

मैंने बाकी बच्चों से कहा कि वे चुने काम शुरू कर सकते हैं। पहले तो वे बच्चे हिचकिचाए, फिर धीरे-धीरे उन्होंने खेलना शुरू कर दिया। इससे प्रकाश और वेंकटेश काफी नाराज़ हो गए। कुछ देर बाद उन्होंने पूछा, "आप कब जाओगी"। मैंने कहा, "मैं रोज़ आऊंगी"। थोड़ी देर तक दोनों सिर पकड़ कर बैठे रहे, फिर वेंकटेश ने कहा, "अच्छा मैं चित्र बनाऊंगा"। मैंने कहा, "ठीक है, तुम्हें मालूम है कि सामान कहां से लेना है और कहां रखना है?" उसने तन कर कहा, "हां मालूम है"।

जब प्रकाश ने वेंकटेश को भी चित्र बनाते देखा तो कुछ देर तो बैठकर सोचता रहा, फिर उठकर उसने भी कागज़ व क्रेयॉन उठाया और चित्र बनाने लगा। एक बार जब वेंकटेश ने चित्र बनाना शुरू किया तो वह उसमें रूचि भी लेने लगा। उसने पेड़ बनाए, घर बनाए, गाय आदि बनाए और शिक्षिका को चित्रों के बारे बताया, वह उनसे चीज़ों के नाम लिखने का आग्रह करने लगा। वहीं प्रकाश चुपचाप चित्र बनाता रहा।

जो बच्चे ब्लॉक से खेलने के लिए गए, उन्हें मालूम नहीं था कि शुरू कैसे करें। वे बेतरतीब ढंग से सभी ब्लॉकों को एक

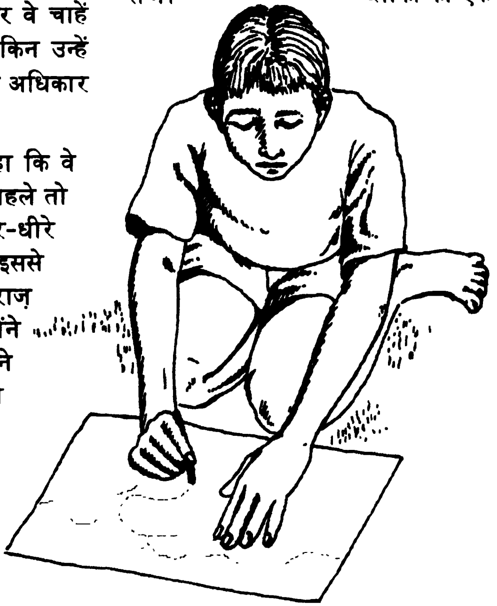

साथ पटक देते थे। यह देख एक शिक्षिका उनके साथ बैठकर खेलने में मदद करने लगी। इसी तरह चीज़ें बनाने वाले खिलौनों में मदद के लिए एक शिक्षिका बैठ गई।

इसके बाद बीच की उम्र के समूह को बुलाया और उन्हें भी नियम बताए गए। इन छह बच्चों में से प्रत्येक ने अपने पसंद की जगह चुनी। इन्हें भी अपने पसंद के खिलौनों से खेलने में मदद की गई। इसके बाद सबसे छोटे बच्चों के समूह - जिसमें 8,10 सदस्य थे - को अंदर लाया गया। बच्चे धीरे-धीरे मज़े से अपनी-अपनी चुनी गतिविधि करने लगे। पहले तो शिक्षिका कुछ चीज़ें देखना भूल गई, धीरे-धीरे उसे समझ में आ गया कि उसे क्या करना है।

वेंकटेश के चित्रों पर शिक्षिका ने उसे फीडबैक दिया और उसे बाहर ले जाकर चीज़ों को देखकर चित्र बनाने को कहा। इससे उसके चित्रों में कुछ सुधार हुआ।

ये सब गतिविधियां एक घन्टे के बाद रोक दी गईं। बच्चों ने कहने पर सभी सामग्री को ठीक जगह पर रख दिया।

फीडबैक

जब बच्चे चले गए तब हम सब चर्चा करने के लिए बैठे। शिक्षिकाओं ने कहा - हमारे लिए स्वतंत्रता का अर्थ कुछ और था। इसके बाद 'स्वतंत्रता का मतलब क्या है' पर चर्चा हुई - स्वतंत्रता में अनुशासन, एकाग्रता व निरन्तर काम शामिल हैं। मैंने कहा, "सीखने के लिए उपयुक्त माहौल चाहिए। माहौल में सृजनात्मकता के लिए, व्यक्तिगत इच्छा के अनुसार तय करने का अधिकार तो होना चाहिए, परन्तु एक सीमा में, एक दायरे में।"

अपनी जगह व दायरे में जब व्यक्ति अपनी ज़रूरत चुनने लगता है और अनुशासन के साथ काम करता है तभी वह सीख पाता है। और एक बार वह सीख गया तो दायरा बढ़ाया जा सकता है और धीरे -धीरे उसे पूरा दायरा भी दिया जा सकता है। अब वह इस दायरे में उथल-पुथल नहीं मचाएगा और अपने सीखने के लिए उपयुक्त काम को पहचानने लगेगा। उसे तब किसी और से अपने जीवन के नियोजन की आवश्यकता नहीं होगी। उसे डांटने, मारने या सज़ा देने की बात नहीं है। जब धीरे-धीरे वह समझेगा तो वह अनुशासित, आत्मविश्वासी तथा सहयोगी भावना से भरपूर होगा।

यह बात भी हुई कि बच्चों को अपनी-अपनी रुचि के आधार पर आगे बढ़ने का मौका देना चाहिए। उदाहरण के लिए वेंकटेश की रुचि चित्र बनाने में है। चित्र बनाने से शुरू करके वह उसके बारे में बताना चाह रहा था, फिर अपनी बताई बात को और अपने नाम को लिखने की इच्छा उसमें आई।

जब तक अनुशासन व स्वतंत्रता का सही संतुलन नहीं होगा तब तक कुछ नहीं सीखा जा सकता - वास्तव में शिक्षण कार्य का एक बड़ा हिस्सा बच्चों में स्वतंत्र अनुशासन बनाने के लिए होना चाहिए। ऐसा अनुशासन जिसमें बच्चे को चुनने, एकाग्रता से कार्य करने और काम को

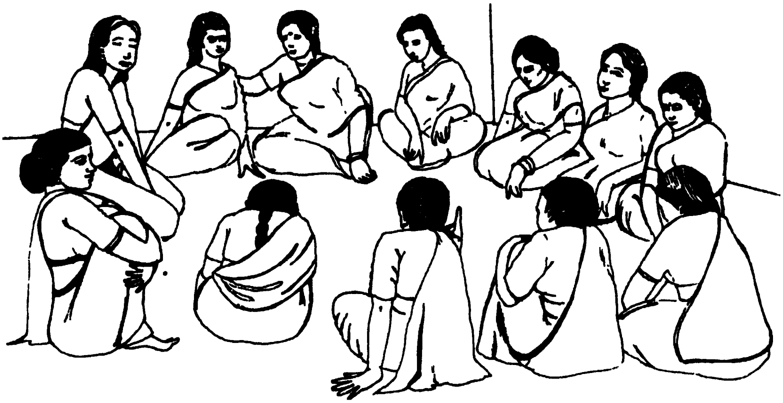

पूरा करने का मौका हो। अनुशासन का मतलब यह नहीं है कि सभी बच्चे स्तब्ध व शान्त बैठें और शिक्षक को सुनें और न ही स्वतंत्रता का मतलब है कि हर बच्चा वह करे जो उसका मन कहता है।

इस संतुलन को प्राप्त करने के कई आयाम हैं। जैसे

- कक्षा की निश्चित व्यवस्था।
- कक्षा में उपलब्ध सामग्री को रखने की निश्चित व्यवस्था।
- बच्चों को छोटे समूहों में बांटना व उन्हें स्वतः संचालित गतिविधियां करवाना।
- उन्हें स्पष्ट रूप से बोलकर निर्देश देना जिन्हें वे समझ सकें व जिनके महत्व का अहसास उन्हें हो जाए।
- बच्चे सीखने के लिए प्रेरित होंगे तो मुश्किल होने पर भी सीखने की कोशिश करेंगे।
- निर्देशों को कई बार दोहराया जाना चाहिए, अगर आप थक जाएं तो भी।
- अगर बच्चे ने एक संदर्भ में सीख लिया और वह स्वतः अपने को अनुशासित कर पाया तो हर परिस्थिति में वह अनुशासन में रहकर काम कर सकेगा।
- एक बार में सीखने के एक ही बिन्दु पर ज़ोर हो, बहुत सारी बातों पर ज़ोर होने से बच्चा भ्रम में पड़ जाएगा।

बात यह भी है कि सिखाना सिर्फ पढ़ना-लिखना सिखाने तक नहीं रुकना चाहिए। हमें बच्चों को ज़िम्मेवारी लेने लायक व्यक्ति बनाना है। हम यह भी कोशिश करते हैं कि वह समस्याओं के सकारात्मक हल ढूंढे, उसमें खुशी हो, आत्मविश्वास हो, समझ हो, वह लोगों से प्यार करे व सच व इन्साफ के लिए खड़ा होकर लड़ सके।

कक्षा भी जीवन अनुभव का एक हिस्सा है और यदि शिक्षक ध्यान से व

बारीकी से देख सके तो वह कक्षा की कार्यवाही में बहुत-सी बातें ढूंढकर इस सब के लिए उपयोग कर सकता है। बच्चों का व्यवहार, उनके द्वारा पूछे गए सवाल, उनकी आपसी बातचीत, उनकी क्रिया अथवा खेले गए खेल आपकी मदद करेंगे और आप बच्चों के लिए अगले दिन का जो कार्यक्रम बनाएंगे उसका आधार बनेंगे।

हमने इस दिन के अपने अवलोकनों और अपनी परिस्थिति के आधार पर अगले दिन का कार्यक्रम बनाया। हमने यह तय किया कि हम समूह 2 व 3 को वही करने का मौका देंगे जो उन्होंने आज किया। पहले समूह के लिए हमने कुछ इस तरह का कार्यक्रम सोचा-

1. कुछ इस तरह के अभ्यास जिनसे उनकी शारीरिक उर्जा अभिव्यक्त हो।
2. अखबारों पर क्रेयॉन से चित्रकला।
3. यदि वह निर्देशों के अनुसार कार्य करें तो उन्हें सफेद कागज़ व ऑइल पेस्टल दिए जाएंगे।
4. चित्रों के आधार पर वे विवरण लिखेंगे। उनमें से एक पैराग्राफ को लिखकर बोर्ड पर लगाना और उनके नीचे उस समूह के बच्चों के नाम लिखना।
5. चूंकि वे ठीक तरह से रंग नहीं भरते थे इसलिए रंग भरने की रूप-रेखा बनाकर देना।
6. इनाम स्वरूप (उनके लिए जो पिछले दिन बताए नियमों का पालन करेंगे) कागज़ काटकर चीज़ें बनाना।
7. पेंट करने (रंग भरने) में भी एक नई गतिविधि कराना।
8. इसके अलावा पिछले दिन की तीन गतिविधियां करना - चीज़ें बनाने वाले खिलौनों के साथ, ब्लॉक के साथ या फिर बाहर खेलना।

कल क्या होगा हमें मालूम नहीं था... ।

कौन है यह, पहचानिए तो ज़रा!

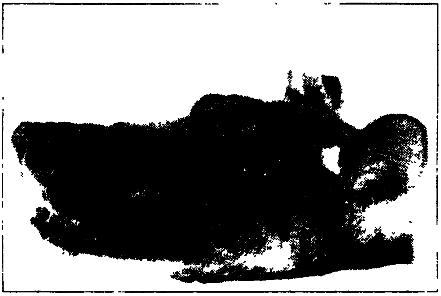

यदि लगता है कि आपने इसे पहचान लिया है, तो हमें लिख भेजिए, संदर्भ, द्वारा एकलव्य कोठी बाज़ार, होशंगाबाद के पते पर। अगले अंक में हम सही जवाबों को प्रकाशित करेंगे।

दो तरह की अम्लीयता, क्षारीयता

ph से तो सिर्फ घोल में अम्ल या क्षार की प्रबलता ही मालूम पड़ेगी, इनकी कुल मात्रा मापने के लिए तो मानक घोल से उदासीनीकरण की प्रक्रिया ही अपनानी पड़ेगी।

● सुशील जोशी

अम्लीयता और क्षारीयता के मापन की विधि आप पढ़ चुके हैं (संदर्भ के दूसरे अंक में)। उसी अंक में आपने पीएच (ph) मापन की विधि भी पढ़ी। शायद आप में से कुछ ने उन प्रयोगों को करके भी देखा होगा। एक बार दोहरा लेने से मदद मिलेगी।

अम्लीयता-क्षारीयता के मापन के लिए हम क्षार या अम्ल का एक मानक घोल लेते हैं। इसकी सांद्रता हमें ज्ञात है। अब जिस घोल की अम्लीयता-क्षारीयता नापनी है उसका उदासीनीकरण इस मानक घोल के निश्चित आयतन से करते हैं। फिर जाने-माने $N_1 \times V_1 = N_2 \times V_2$ के सूत्र से हम अज्ञात घोल में अम्ल-क्षार की मात्रा पता लगा लेते हैं। (जहां N_1 व N_2 पहले और दूसरे घोल में अम्ल और क्षार की मात्रा दर्शाते हैं और V_1 व V_2 आयतन।)

आप यह भी जानते हैं कि अम्लीयता-क्षारीयता की दूसरी माप है ph उदासीन पानी की ph 7 होती है। 7 से कम पी.एच. होने पर घोल अम्लीय कहलाता है और 7 से ज़्यादा ph हो तो क्षारीय। ph नापने के लिए यूनिवर्सल ph घोल का उपयोग किया जाता है।

बहरहाल अम्लीयता-क्षारीयता मापन की इन दो विधियों में क्या अंतर है यह समझना अनिवार्य है। मसलन सवाल यह उठता है कि यदि किसी घोल की ph 6.5 है और किसी घोल की ph 4.2 है तो किसकी अम्लीयता ज़्यादा होगी? दूसरे शब्दों में, सवाल यह है कि ph क्या

दर्शाती है? या किसी क्षार की ph 8.5 है और किसी अन्य क्षार की ph 11.3 है तो किसकी क्षारीयता ज़्यादा होगी?

इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए हमें अम्ल और क्षार के एक गुण पर विचार करना होगा। अम्ल वे पदार्थ हैं जो पानी में घोले जाने पर हाइड्रोजन आयन (H^+) देते हैं।
तथा क्षार वे पदार्थ हैं जो हाइड्रॉक्सिल आयन (OH^-) देते हैं।
स्वयं पानी भी कुछ हद तक विभाजित होकर हाइड्रोजन व हाइड्रॉक्सिल आयन के रूप में मौजूद रहता है:

$H_2O \quad H^+ + OH^-$ - - - (1)

(ज़ाहिर है कि हम अम्ल-क्षार की अर्हिनियस अवधारणा का इस्तेमाल कर रहे हैं। हमारे मकसद के लिए वही पर्याप्त व उचित है।)

$HCl \rightleftharpoons H^+ + Cl^-$ - - - (2)

$NaOH \rightleftharpoons Na^+ + OH^-$ - - (3)

दोनों तरफ बने तीर के निशान से पता चलता है कि ये सारी क्रियाएं दोनों दिशाओं में चलती रहती हैं - इन्हें कठिन शब्दावली में उत्क्रमणीय क्रियाएं कहा जाता है। वैसे इन्हें दोतरफा क्रिया कहने से भी काम चल जाएगा। पानी का आयनीकरण (समीकरण-1) देखने से पता चलता है कि H^+ व OH^- आयन बराबर संख्या में बनते हैं। लिहाज़ा पानी उदासीन बना रहता है। मगर फिर भी हम यह गणना तो कर ही सकते हैं कि उदासीन पानी में कितने H^+ आयन होते हैं और कितने OH^- आयन। अलग-अलग तापमान पर ऐसी गणनाएं करके जो निष्कर्ष निकाले गए हैं, वे इस तालिका में दिए गए हैं-

तापमान ° से.	**पानी का आयन गुणनफल** (एक लीटर पानी में कितने ग्राम आयन हैं)	**उदासीन पानी की ph**
0	1.139×10^{-15}	7.970
18	5.702×10^{-15}	7.117
25	1.008×10^{-14}	7.0 (6.999)
50	5.474×10^{-14}	6.631
100	5.9×10^{-13}	6.120

पानी का आयनों में विभाजन बहुत कम मात्रा में होता है। पानी को आयनों में विभक्त करने की प्रक्रिया में काफी ऊर्जा (ऊष्मा) लगती है। इसलिए तापमान बढ़ने पर आयनीकरण ज़्यादा होता है। परन्तु एक बात ध्यान में रखनी होगी कि तापमान कुछ भी हो मगर जब भी पानी के एक अणु का आयनीकरण होगा तो बराबर संख्या में H^+ व OH^- आयन बनेंगे।

तालिका देखकर बताइये कि तापमान के साथ आयन गुणनफल बढ़ता है या घटता है?

आयन गुणनफल और आयन भार

H^+ व OH^- आयनों की मात्रा के गुणनफल को आयन गुणनफल कहते हैं। आयनों की मात्रा हम ग्राम आयन प्रति लीटर में नापते हैं। जिस तरह अणु भार को जब ग्राम के रूप में व्यक्त करते हैं तो ग्राम अणु कहते हैं उसी प्रकार से आयन भार को जब ग्राम में व्यक्त करते हैं तो उसे ग्राम आयन कहते हैं।

1 ग्राम हाइड्रोजन आयन = 1 ग्राम आयन H^+

17 ग्राम हाइड्रॉक्सिल आयन = 1ग्राम आयन OH^-

पानी का आयन गुणनफल = $(H^+)\ (OH^-)$

आप जानते ही हैं कि H^+ व OH^- बराबर मात्रा में बनेंगे। तालिका 1 के आधार पर बताइए कि विभिन्न तापमानों पर पानी में H^+ की मात्रा कितनी होगी?

ph क्या चीज़ है?

हमने देखा कि पानी का आयनीकरण होने पर H^+ और OH^- आयन बनते हैं। अर्हिनियस नामक वैज्ञानिक ने यह स्पष्ट किया था कि H^+ आयन अम्लीय गुण दर्शाते हैं और OH^- आयन क्षारीय गुण। पानी का आयनीकरण होने पर दोनों बराबर संख्या में बनते हैं इसलिए पानी उदासीन ही रहता है - इसीलिए पानी उभयधर्मी कहलाता है।

अब मान लीजिए हम नमक के अम्ल को पानी में घोलते हैं। नमक के अम्ल का भी आयनों में विभाजन होता है:

$HCl^- \rightleftharpoons H^+ + Cl^-$

इसी प्रकार से एसिटिक अम्ल को पानी में घोलने से भी आयन प्राप्त होते हैं:

$CH_3COOH \rightleftharpoons CH_3OO^- + H^+$

अर्थात् अम्ल घोलने पर H^+ आयन की मात्रा बढ़ेगी। हमें फिलहाल इस बात से कोई मतलब नहीं कि ऋणात्मक आयन कौन-सा है। इसी प्रकार से किसी क्षार (जैसे सोडियम हाइड्रॉक्साइड) को पानी में घोलें तो इस तरह आयनीकरण होता है:

$NaOH \rightleftharpoons Na^+ + OH^-$

$Ca(OH)_2 \rightleftharpoons Ca^{++} + 2OH^-$

यानी क्षार घोलें तो OH^- की मात्रा बढ़ेगी। यहां एक रोचक बात पर ध्यान देना ज़रूरी है। जब हम जलीय विलयन की बात कर रहे हैं तो यह पक्की बात है कि उसमें H^+ और OH^- आयनों की मात्रा का गुणनफल एक निश्चित तापमान पर स्थिर रहता है।

मसलन 25 डिग्री सेल्सियस पर यह गुणनफल लगभग 7×10^{-14} होता है। यदि उसमें अम्ल डाला तो H^+ आयन की सांद्रता बढ़ेगी। गुणनफल को स्थिर रखते हुए उसी अनुपात में OH^- की सांद्रता कम हो जाएगी। इसी प्रकार से क्षार मिलाने पर OH^- की सांद्रता बढ़ती है और उसी अनुपात में H^+ की सांद्रता घट जाती है।

ऐसा क्यों होता है उसमें बाद में

जाएंगे; पहले इसका एक फायदा देख लें। H^+ व OH^- के इस संतुलन की वजह से फायदा यह होता है, कि इनमें से किसी एक की सांद्रता मालूम हो तो दूसरे की सांद्रता की गणना की जा सकती है बशर्ते कि दोनों आयनों का गुणनफल मालूम है।

ऐसा क्यों होता है?

अगर पानी में नमक का अम्ल मिलाया जाए तो उसमें दोनों का आयनीकरण होगा। इन्हें समीकरणों के रूप में इस तरह लिख सकते हैं:

$HCl \rightleftharpoons H^+ + Cl^-$

$H_2O \rightleftharpoons H^+ + OH^-$

इन दोनों में ही H^+ आयन उत्पन्न हो रहे हैं। सरल शब्दों में कहें तो इन दो क्रियाओं के बीच प्रतिस्पर्धा होती है। इस प्रतिस्पर्धा में पानी का आयनन कम हो जाता है। अतः OH^- की संख्या भी कम हो जाती है। इसी प्रकार से पानी और कॉस्टिक सोडा के घोल में:

$H_2O \quad H^+ + OH^-$

$NaOH \rightleftharpoons Na^+ + OH^-$

यहां भी दोनों के बीच प्रतिस्पर्धा के कारण पानी का आयनन कम हो जाता है तथा इस तरह से H^+ की मात्रा कम हो जाती है।

उदासीन पानी में 14 डिग्री सेल्सियस पर आयन गुणनफल लगभग 10^{-14} है। इसमें बराबर मात्रा में H^+ व OH^- आयन हैं। यदि इसमें H^+ आयन की संख्या बढ़े तो OH^- की संख्या कम हो जाएगी क्योंकि इन दो का गुणनफल तो स्थिर रहना है। अर्थात् अम्लीयता और क्षारीयता, दोनों को H^+ आयनों की मात्रा के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है।

सुविधा की दृष्टि से (ध्यान रखें सिर्फ सुविधा की दृष्टि से) H^+ की मात्रा दर्शाने का एक अनोखा तरीका खोजा गया है।

आइए उस तरीके को देखें। सबसे पहले H^+ आयन की मात्रा (ग्राम आयन प्रति लीटर) का लघुगणक या log निकाल लेते हैं। मसलन यदि H^+ की मात्रा 10^{-7} ग्राम आयन प्रति लीटर है तो

$\log (H^+) = \log 10^{-7} = -7$

अब इसको ऋणात्मक बना देते हैं

$(-) \times (-7) = 7$

इसी संख्या को ph कहते हैं। दूसरे शब्दों में ph वह संख्या है जो H^+ की ग्राम आयन प्रति लीटर मात्रा का ऋणात्मक log या लघुगणक है। इसके अनुसार 25 डिग्री सेल्सियस पर उदासीन पानी की ph 7 होगी।

यदि H^+ आयन की सांद्रता बढ़े तो ph कम हो जाएगी। उदाहरण के लिए किसी घोल में 10^{-2} ग्राम आयन प्रति लीटर H^+ है तो इसकी ph

$-\log 10^{-2} = (-) -2 = 2$ होगी

- ज़रा गणना कीजिए की ph 4 वाले घोल में OH^- की सांद्रता कितनी होगी? यहां यह स्पष्ट करना ज़रूरी है कि अम्लीय घोल में भी OH^- आयन मौजूद होते हैं मगर इनकी मात्रा H^+ आयन से कम होती है।
- किसी घोल में H^+ की मात्रा 3 ×

10^{-2} ग्राम आयन प्रति लीटर है। इसकी ph कितनी होगी?

• यदि इस घोल में H^+ की मात्रा दुगुनी कर दी जाए तो इसकी ph कितनी हो जाएगी?

• यदि H^+ आयन की मात्रा 10 गुनी कर दी जाए तो इसकी ph कितनी हो जाएगी?

ph दो बातों पर निर्भर है। पहली बात है कि उस घोल में कितना अम्ल मिलाया गया है? और दूसरी बात है कि अम्ल का आयनों में विभाजन कितने हद तक हुआ है। जितना ज़्यादा विभाजन होगा, तद्नुसार ph भी उतनी ही ज़्यादा होगी। अलग-अलग अम्लों का विभाजन (आयनीकरण) अलग-अलग हद तक होता है। प्रबल अम्लों का आयनीकरण काफी ज़्यादा होता है। प्रबल अम्लों के तनु घोल में तो लगभग पूरा अम्ल ही आयनों के रूप में मौजूद रहता है। दुर्बल अम्लों का आयनीकरण अपूर्ण होता है। उदाहरण के लिए

प्रबल अम्ल

$HCl = H^+ + Cl^-$

दुर्बल अम्ल

$CH_3COOH = CH_3OO^- + H^+$

(तीर की लंबाई से क्रिया की रफ्तार का पता चलता है।)

ऊपर की समीकरणों से दो बातें साफ हैं

1. कि अम्ल/क्षार के आयनीकरण की क्रिया दोतरफा क्रिया है। यानी अम्ल/क्षार विभक्त होकर आयन बनाते हैं और आयन वापस जुड़कर अम्ल/क्षार बना देते हैं।
2. कि विभिन्न अम्लों/क्षारों में आयनीकरण की रफ्तार और वापस जुड़ने की रफ्तार अलग-अलग होती है। किसी में आयनीकरण ज़्यादा होता है तो किसी में कम। यानी एक समय पर किसी भी अम्ल/क्षार के घोल में आयनों की एक निश्चित मात्रा होती है।

ph के द्वारा हम यही नापते हैं कि किसी भी वक्त अम्ल/क्षार के घोल में H^+/OH^- की मात्रा कितनी है। इसे सक्रिय अम्लीयता/क्षारीयता कहते हैं। हो सकता है कि घोल में कुल अम्ल की मात्रा ज़्यादा हो मगर आयनन कम होने की वजह से उसकी ph ज़्यादा आए। (ज़्यादा ph का अर्थ है कि H^+ आयन कम बन रहे हैं।) मसलन यदि हमने एक नार्मल (1N) एसिटिक अम्ल और नाइट्रिक अम्ल लिए हैं तो स्पष्ट है कि इन दोनों को उदासीन करने के लिए एक नार्मल सोडियम हाइडॉक्साइड के घोल के बराबर-बराबर आयतन लगेंगे। यानी इनकी अम्लीयता बराबर है।मगर यदि इनमें (1N CH_3COOH और 1N HNO_3) H^+ का

ph दो बातों पर निर्भर है। पहली कि घोल में कितना अम्ल मिलाया गया है? और दूसरी कि अम्ल का आयनों में विभाजन कितने हद तक हुआ है। जितना ज़्यादा विभाजन होगा, ph भी उतनी ही ज़्यादा होगी।

मापन किया जाए तो HNO_3 में यह मात्रा 1 ग्राम आयन प्रति लीटर आएगी वहीं CH_3COOH में मात्र 0.0034 ग्राम आयन प्रति लीटर ही होगी। यानी नाइट्रिक अम्ल के 1N घोल की ph -log 1 = 0 के आसपास होगी। जबकि एसिटिक अम्ल के 1N घोल की ph -log (.0034) = $-\log 3.4 \times 10^{-3}$ = 3.5 होगी।

यानी ph द्वारा दर्शित सक्रिय अम्लीयता तथा कुल अम्लीयता में बहुत अंतर होता है।

एक बार फिर देखें

1. किसी भी जलीय घोल में ph, H^+ आयनों की मात्रा दर्शाती है।
2. पानी में H^+ और OH^- आयनों की संख्या बराबर होती है। इसलिए पानी को उदासीन माना गया है।
3. अम्ल पानी में घुलने पर हाइड्रोजन आयन (H^+) देते हैं और क्षार पानी में घुलने पर हाइड्रॉक्सिल आयन (OH^-) देते हैं।
4. पानी में अम्ल या क्षार डालने पर H^+ या OH^- की संख्या घट-बढ़ सकती है। परन्तु इन दोनों आयनों का गुणनफल एक निश्चित तापमान पर स्थिर रहता है।
5. क्योंकि पानी का आयन गुणनफल हमें मालूम है (25 डिग्री सेल्सियस पर 1.008×10^{-4} ग्राम आयन प्रति लीटर) इसलिए सिर्फ H^+ आयन की मात्रा दर्शाने से OH^- की मात्रा का अंदाज़ा भी लग जाता है।
6. ph यही दर्शाती है - पानी में आयनों की मात्रा।

   ph = $-\log (H^+)$
7. इसलिए ph 7 हो तो घोल उदासीन माना जाता है। 7 से कम होने पर अम्लीय और 7 से ज़्यादा होने पर क्षारीय। इसलिए ph 7 हो तो घोल उदासीन माना जाता है। घोल अम्लीय हो तो H^+ आयनों की संख्या ज़्यादा होगी और ph कम। घोल क्षारीय हो तो OH^- आयनों की संख्या ज़्यादा होगी, H^+ की कम - इसलिए ph ज़्यादा।
8. यह ध्यान रहे कि अम्लीय घोल में OH^- आयन भी मौजूद होते हैं और क्षारीय में H^+ भी - चाहे इनकी मात्रा कम हो।

7. और अंत में - सबसे महत्वपूर्ण है किसी घोल की नॉर्मेलिटी और ph में अंतर समझना।

किसी भी घोल की नॉर्मेलिटी और मात्रा/आयतन पता होने से उस घोल में मौजूद अम्ल या क्षार की कुल मात्रा का पता चलता है।

परन्तु ph सिर्फ यह बताती है कि उस घोल में अम्ल या क्षार कितने प्रबल हैं या कमज़ोर - कितने H^+ या OH^- आयन छोड़ रहे हैं। ph से कुल अम्लीयता या क्षारीयता पता नहीं चलती।

* * *

(सुशील जोशी - विज्ञान एवं पर्यावरण विषयों पर सतत् लेखन।)

ये ढांचे कैसे बने .... ?

रश्मि पालीवाल

भारतीय भवन निर्माण कला के इतिहास में कई कड़ियां हैं। घास फूस के भवन, लकड़ी के भवन, चट्टानों को खोदकर बनाए गए भवन, पत्थर की सिलों को जोड़कर बनाए गए भवन, ईंट-गारे से बने भवन ......। इस लेख में इन कड़ियों पर प्रकाश डालने का प्रयास है।

यह भारत की प्राचीन स्थापत्य कला के कुछ उदाहरणों पर आधारित एक चित्र-अभ्यास है। अभ्यास के लिए इस लेख में पूछे गए प्रश्नों पर क्रम से अंक डाले गए हैं। आप चाहें तो प्रश्नों के उत्तर *'संदर्भ'* को लिखकर भेज सकते हैं। हमारी कोशिश होगी कि आपके उत्तरों पर पत्र द्वारा या इस पत्रिका के किसी आगामी अंक में चर्चा की जा सके।

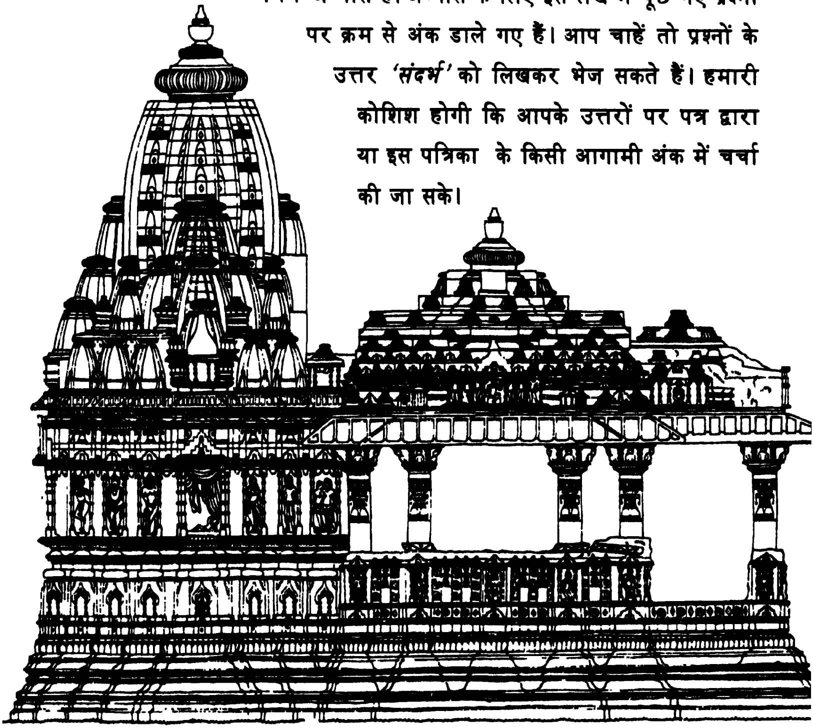

लकड़ी की इमारतों से पत्थर की इमारतों तक ....

सांची, भारहुत आदि स्तूपों के तोरण द्वारों पर खुदे दृश्यों के आधार पर पर्सी ब्राउन अनुमान लगाते हैं कि मौर्य कालीन गांवों का दृश्य कैसा रहा होगा। पुरातात्विक खुदाई से भी जान पड़ता है कि उन दिनों घर बनाने के लिए सरकण्डों, घास-फूस, पत्तों व लकड़ी का उपयोग बहुत होता था। कुछ हद तक शहरों में कच्ची ईंट व खपरैल जैसी निर्माण सामग्री भी काम में लाई जाती थी।

उन दिनों पत्थर का उपयोग सीमित था। सोचिए तो भला क्यों?

चित्र 1. एक काल्पनिक मौर्यकालीन गांव

चित्र 2. यह भारहुत स्तूप (लगभग 150 ई.पू.) से मिली एक नक्काशी है। इसमें लकड़ी व बांस से बने घर दिख रहे हैं।

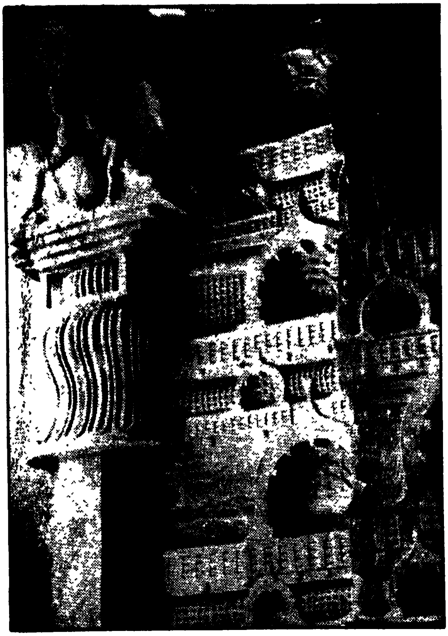

चित्र 3. बेदसा की गुफा पर बनी नक्काशी (लगभग 50 ई.पू.)। इसमें भी बांस और लकड़ी से बनी इमारतों को दिखाया गया है।

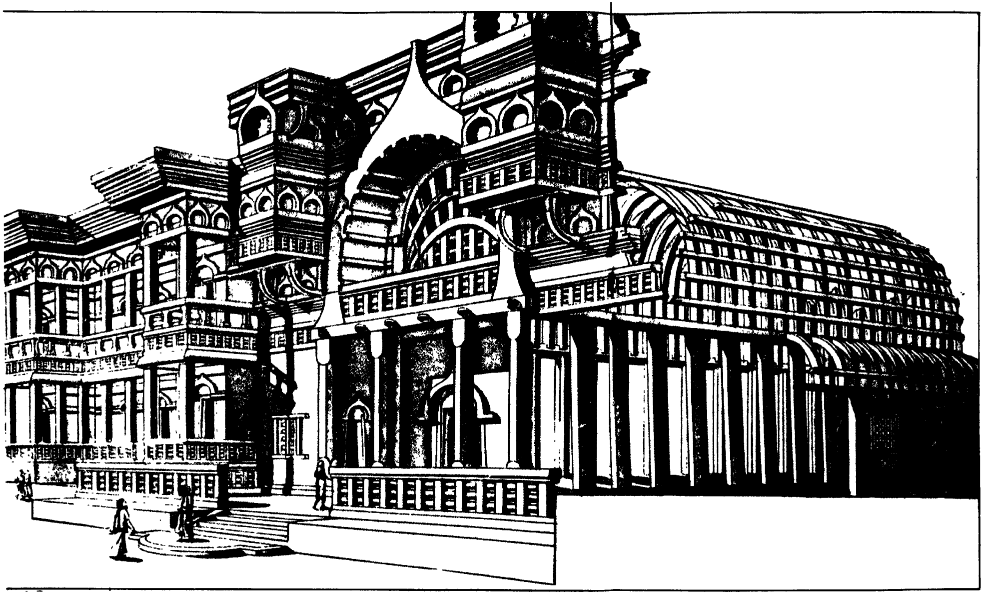

चित्र 4. लकड़ी से बनी एक भव्य इमारत का ढांचा – एक कल्पना

लकड़ी से बने एक बड़े भवन के अनुमानित ढांचे को चित्र 4 में देखें। मौर्य तथा मौर्योत्तर काल में इस तरह के भवन शहरों में पाए जाते थे। चित्र -1 और 4 को गौर से देखिए और बताइए,

- *तोरण द्वार और बागुड़ (जिसे वेदिका कहा जाता था) बनाने के लिए लकड़ियां कैसे जोड़ी गई हैं? (2)*
- *छत को गोलाकार कैसे बनाया गया है? (3)*
- *छत के लिए लकड़ी का ढांचा बनाने के बाद उसे ऊपर से किन-किन तरीकों से पाटा गया है? (चित्र-1 में चार अलग चीज़ों से पाटी गई छतों को देखिए।) (4)*

उन दिनों के कारीगरों व कलाकारों के मन में लकड़ी से निर्माण की तकनीक और लकड़ी से बने ढांचों की छवि इतनी गहराई तक बसी हुई थी कि आगे चलकर जब लोग पत्थर से इमारतें बनाने लगे तब भी काष्ठकला का असर उन पर बना रहा। निर्माण की सामग्री में लकड़ी के स्थान पर पत्थर का उपयोग होने के बावजूद कुछ परम्पराएं तब भी बनी रहीं। आइए इसके कुछ उदाहरण देखते हैं।

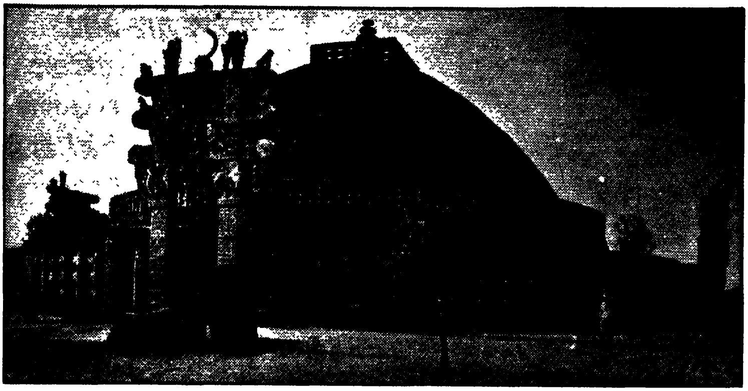

चित्र 5. सांची स्तूप

स्तूप

बुद्ध की मृत्यु के बाद उनकी अस्थियों के ऊपर जगह-जगह कई स्तूप बनाए गए। स्तूप एक तरह का टीला होता है - अन्दर से ठोस। मिट्टी की कच्ची ईंटों व पत्थरों को एक के ऊपर एक जमाकर इसे बनाया जाता था। ऊपर से मिट्टी या चूने का पलस्तर चढ़ाया जाता था। स्तूप को चारों तरफ से बागुड़ और तोरण द्वारों से घेरा जाता था। (चित्र-5, 6)

स्तूप के तोरण द्वार और वेदिका (बागुड़) पहले लकड़ी के बनाए जाते थे, पर फिर इन्हें पत्थर से बनाया जाने लगा।

- पत्थर का उपयोग करने की कोशिश क्यों हुई होगी? (4)

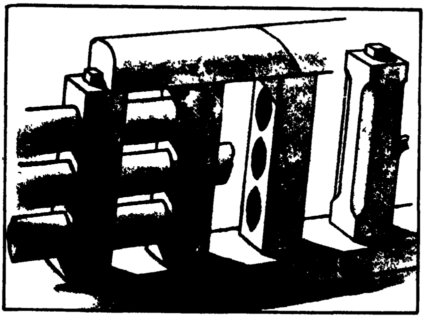

चित्र 6. वेदिका या बागुड़

इमारतों को ज़्यादा भव्य, ज़्यादा मज़बूत और ज़्यादा चिरस्थाई बनाने के लिए कारीगरों ने पत्थर का उपयोग तो किया लेकिन उन्हें ज़्यादा अभ्यास तो लकड़ी के काम का ही था। इसकी पुरानी परम्परा भी बन चुकी थी। इसलिए पत्थरों की वेदिका भी ठीक वैसे ही जोड़ी गई जैसे लकड़ी की जोड़ी जाती थी। चित्र 1, और चित्र 6 से इस बात को समझें।

- *पत्थर के तोरण द्वार बनाने में भी इसी तरीके का उपयोग कैसे किया गया दिखता है? (5)*
- *पत्थर से वेदिका और तोरण द्वार क्या किसी और तरीके से बनाए जा सकते हैं? ज़रा सोचिए। (6)*

चैत्य एवं विहार

लकड़ी की बजाए पत्थर से इमारतें बनाने की कोशिश जारी रही। शुरू में पत्थर से ज़मीन पर स्वतंत्र रूप से खड़ी हुई इमारतें बनाने की बजाए छोटी-छोटी पहाड़ियों में गुफाएं खोदी गईं। ये गुफाएं लम्बी-चौड़ी पहाड़ियों का हिस्सा बनी रहीं-वे अलग से स्वतंत्र खड़ी की गई इमारतें नहीं थीं।

चित्र 7. गुफा के ऊपर और नीचे पहाड़ का बिना तराशा हुआ हिस्सा दिख रहा है

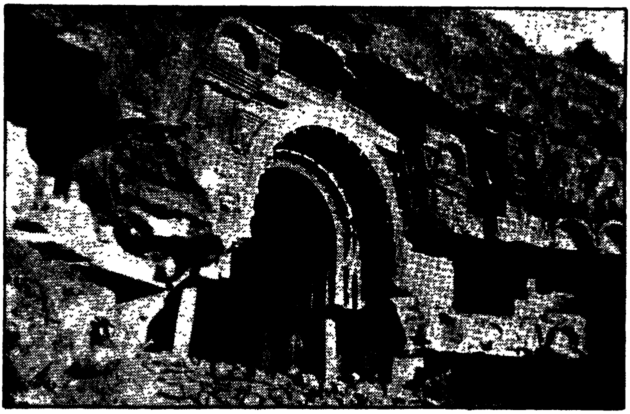

अशोक के समय से (तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व) शुरू होकर सैकड़ों ऐसी गुफाएं बनाई गईं। जिन गुफाओं के अंदर पूजा के लिए स्तूप बनाए जाते थे वे 'चैत्य' कहलाती थीं। इसी तरह जिन गुफाओं में भिक्षुओं के ठहरने के लिए कमरे बने होते थे वे 'विहार' कहलाती थीं।

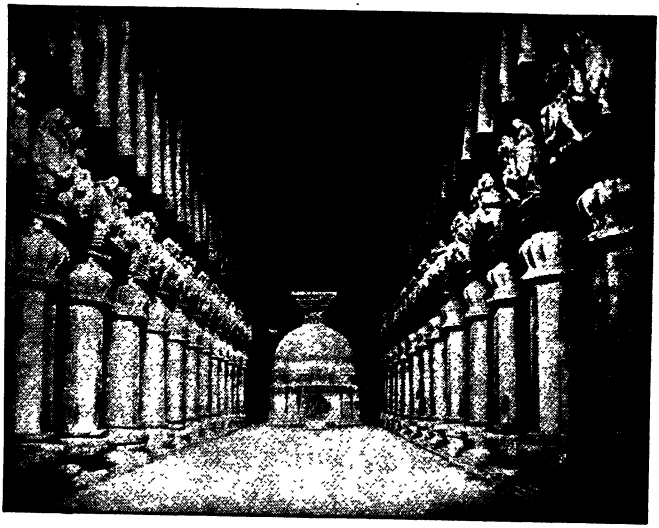

चित्र 8. पहाड़ के अंदर बनाई गई गुफा की छत को ध्यान से देखिए और चित्र 4 के भवन से तुलना करते हुए दोनों छतों में समानता पहचानिए।

- *छत की चट्टान पर तराशे गए गोलाकार पटियों की क्या उपयोगिता नज़र आ रही है? (7)*
- *क्या छत इन पत्थरों के पटियों के सहारे बनाई गई है? अगर ये पटिए नहीं तराशे जाते तो क्या छत ढह जाती? (8)*
- *चित्र-7 में गुफा के प्रवेश द्वार के ऊपर बने विशाल अर्द्धगोलाकार हिस्से को देखिए। इसके अंदरूनी भाग में*

थोड़ी-थोड़ी दूरी पर पत्थर में पटिए क्यों तराशे गए हैं? (9)

- ये पटिए आपको किस चीज़ की याद दिलाते हैं? (10)

- चित्र-8 में गुफा में बने हुए भव्य खम्भे दिख रहे हैं। क्या ये छत को टिकाने के लिए बनाए गए हैं या किसी और कारण से बने हैं? (11)

एक तरफ जहां हमारा ध्यान लकड़ी से निर्माण करने की तकनीकों के असर की ओर जाता है तो दूसरी ओर हम यह भी महसूस करते हैं कि चैत्यों और विहारों को बनाने में भारी भरकम चट्टानों को काटने व तराशने की तकनीक को कितनी हिम्मत और मेहनत से विकसित किया गया था। शायद इसीलिए इन भव्य ढांचों को शिल्पकला के कार्य के रूप में ज़्यादा समझा जाता है और भवन निर्माण के रूप में कम।

पत्थर के स्वतंत्र मंदिर

पहाड़ काटकर कई चैत्य, विहार और मंदिर बनाए जाने लगे, पर हर जगह तो पहाड़ उपलब्ध नहीं हैं। ज़ाहिर है कि पत्थर से स्वतंत्र रूप से ज़मीन पर खड़ी इमारतें बनाने का प्रयोग जारी रहा। शुरू में छोटे और सरल भवन बनाए गए। गुप्त काल में (350-500 ईसवी) ऐसी इमारतें बनाई जाने लगीं -

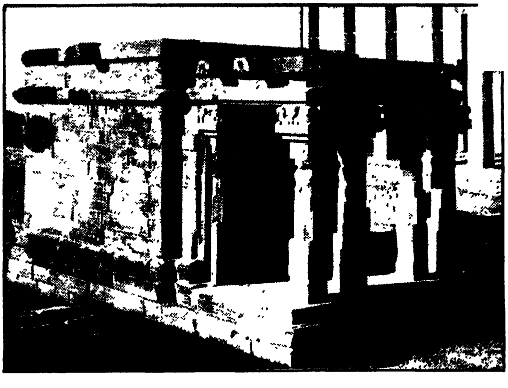

चित्र 9.
सांची का मंदिर नं. 17.
भारत के शुरुआती स्वतंत्र मंदिरों में से एक

- *इन मंदिरों में पत्थरों को कैसे जोड़ा गया है? (12)*
- *छत कैसे बनाई गई है? (13)*

चित्र-10 में 8वीं सदी के एक मंदिर के ढांचे का रेखाचित्र दिया गया है। इसका अध्ययन कीजिए।

- *स्तूपों को बनाने के ढंग और इन मंदिरों को बनाने के ढंग में क्या फर्क है? (14)*
- *किसमें पत्थर की शिलाओं के खिसकने, लुढ़कने को रोकने के लिए ज़्यादा सावधानी बरतनी पड़ी होगी? (15)*

यह सावधानी कैसे बरती गई होगी? सभी पत्थरों के आकार नाप और कटाई पर गौर कीजिए।

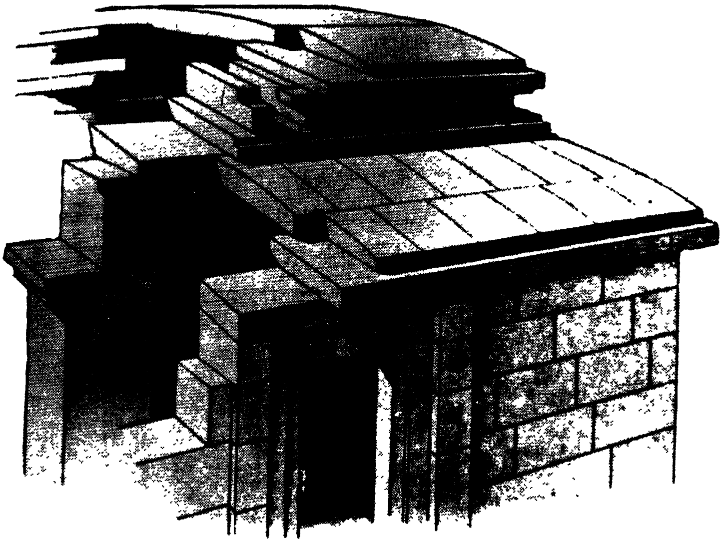

चित्र 10. आठवीं सदी के एक मंदिर का ढांचा

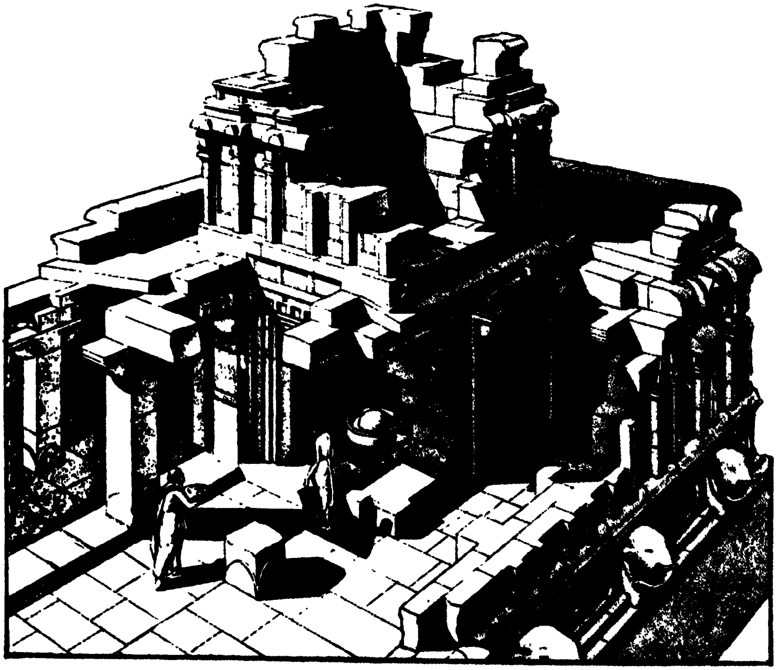

चित्र 11. छटवीं सदी का एक मंदिर – जीर्ण अवस्था में।

अब कहीं भी मंदिर आदि बनाए जा सकते थे, क्योंकि पत्थर की शिलाओं को बड़ी सावधानी से काटने और एक के ऊपर एक इस प्रकार जमाने का अनुभव कारीगरों ने हासिल कर लिया था कि वे गिरे नहीं। पत्थर या ईंटों को चूने व गारे के घोल से मज़बूती से जोड़ने की विधि उन दिनों के कारीगर ज़्यादा इस्तेमाल नहीं करते थे। वैसे भी स्तूप या गुफा चैत्य बनाने में इसकी ज़रूरत भी नहीं थी और भारी पत्थर की शिलाओं से स्वतंत्र भवन बनाने में भी चूने-गारे के जोड़ की बहुत ज़रूरत नहीं होती। पत्थर एक-दूसरे पर भार के सहारे ही संतुलित, सधे हुए रहते हैं। अचरज होता है कि बिना जोड़े

इन भव्य मंदिरों के पत्थर इतने सालों के बाद भी आज तक टिके हुए हैं।

धीरे-धीरे कारीगरों का अनुभव भी बढ़ता गया व हौसला भी। शुरू के मंदिरों की छतें सपाट थीं पर शीघ्र ही मंदिरों पर ऊंचे-ऊंचे शिखर बनाने की कोशिश की गई।

चित्र-11 को देखकर हम समझ सकते हैं कि छत को सपाट न रखकर शिखर के रूप में कैसे उठाया जाने लगा था। शिखर आमतौर पर ऐसे बनते थे कि नीचे चौड़े हों और ऊपर उठते हुए क्रमशः संकरे होते जाएं। क्या आपने गौर किया है कि शिखर को ऊपर संकरा कैसे किया जाता है? एक प्रचलित तकनीक है जिसे अंग्रेज़ी में कॉर्बेलिंग के नाम से जाना जाता है।

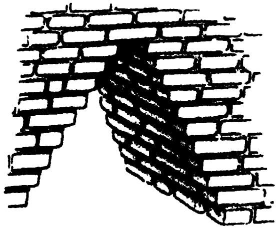

चित्र 12. कॉर्बेलिंग का तरीका

चित्र-12 में ईंट से बने नमूने को देखिए। इसी तरह ईंट या पत्थर की शिलाओं को भी क्रमशः थोड़ा आगे खिसकाकर जमाया जाता था। दीवार के दोनों तरफ से जब ऐसा किया जाता है तब दोनों के बीच का अंतराल संकरा होता जाता है और अंत में एकदम ऊपर दोनों दीवारों की ईंटें या शिलाएं

एक ही बिन्दु पर आकर मिल जाती हैं। इस तकनीक में भी सभी ईंटों या शिलाओं का भार नीचे की ओर सीधा लगता है और बहुत हद तक ऊपर वाली शिला या ईंट का भार नीचे वाली शिलाएं या ईंटें ही सम्हालती हैं।

इस सरल तकनीक से कई तरह के शिखर बनाए गए।

ऊंचे और भव्य शिखरों वाले मंदिरों के पत्थरों में तरह-तरह

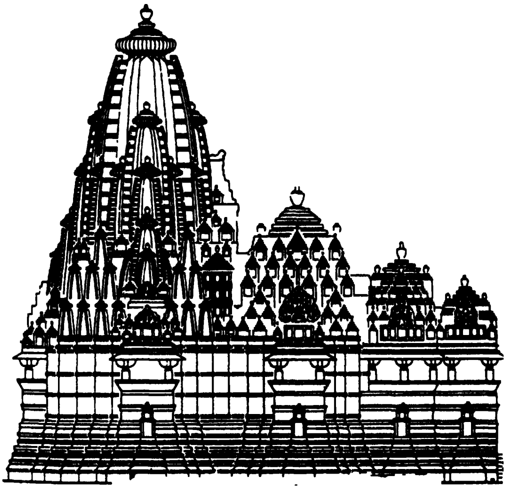

चित्र 13. खजुराहो की शैली

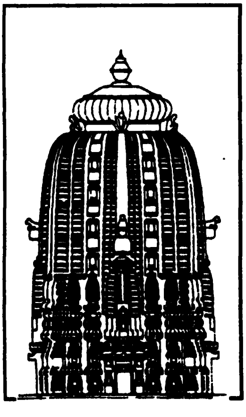

चित्र 14. उड़ीसा की शैली

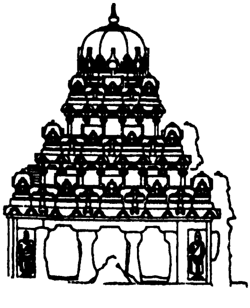

चित्र 15. तमिलनाडू की शैली

की मूर्तियां व आकृतियां तराशने व गढ़ने में भी कारीगरों व कलाकारों ने खूब तन्मयता दिखाई। आज भी लोग जब इन इमारतों को देखते हैं तो कारीगरों के शिल्प-प्रेम से दंग रह जाते हैं।

भव्य इमारतों के कलात्मक प्रभाव का अनुभव हम सबने किया होगा। इसलिए इस लेख में इस पहलू पर ध्यान केन्द्रित न करके हमने निर्माण तकनीकों पर ध्यान केन्द्रित किया है। यह ज़रूरी इसलिए है ताकि हम इन सुन्दर ढांचों को थोड़ा समझने भी लगें।

यह समझें कि बनाने वालों को कौन-सी बातें विरासत में मिली थीं.....और उन्होंने कौन-से नए प्रयोग किये थे.... उन प्रयोगों की क्या सीमाएं थीं और उन्हें कैसे लांघा गया ..?

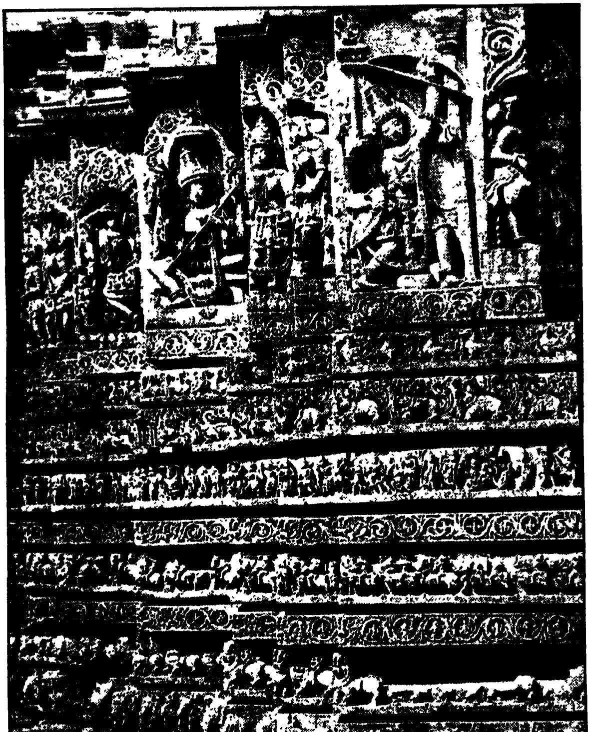

चित्र 16. हलेबीड के होयसळेश्वर मंदिर (सन 1150 ई) की दीवारों में एक इंच जगह भी खाली नहीं मिलेगी!

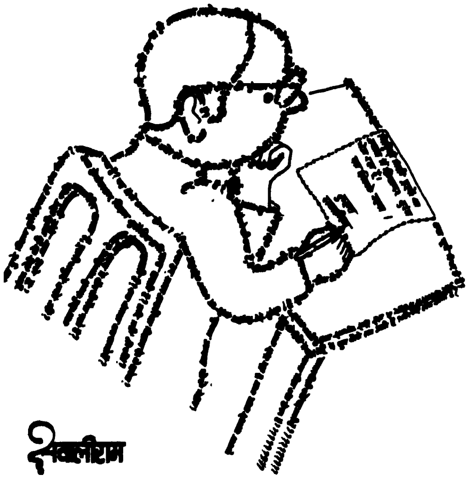

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में दूर-दराज़ फैले बच्चों से संपर्क करने का एक तरीका है सवालीराम - एक काल्पनिक चरित्र, जो बच्चों के द्वारा पूछे गए सवालों का जवाब उन्हें व्यक्तिगत रूप से पत्र लिख कर देता है। इस स्तंभ में हम आपके सामने हर बार कुछ सवाल और उन्हें दिए गए जवाब प्रस्तुत करेंगे।

चांदनी ठंडी नहीं होती

सवाल - सूर्य का प्रकाश गर्म क्यों होता है, चंद्रमा की रोशनी की तरह ठण्डा क्यों नहीं?

यह पता करने के लिए कि किसी भी प्रकाश के स्रोत का किसी अन्य वस्तु पर क्या असर पड़ेगा, हमें दो-तीन बातों की जानकारी होनी ज़रूरी है। यहां पर हम सिर्फ गर्मी की बात कर रहे हैं। यानी कि वस्तु के तापमान पर क्या असर पड़ेगा?

1. प्रकाश का स्रोत कितना गर्म है और कितना बड़ा है।
2. जिस वस्तु पर हम असर देख रहे हैं वह उससे कितनी दूरी पर है।

हमें मालूम है कि सूर्य की सतह का तापमान लगभग 6000 डिग्री सेल्सियस है और सूर्य से पृथ्वी की दूरी लगभग 15 करोड़ किलो मीटर है। सूर्य जितनी ऊर्जा छोड़ता है उसका केवल 2 अरबवां हिस्सा पृथ्वी को मिलता है और उससे दिन में पृथ्वी का तापमान कहीं पर 20 डिग्री से. तो कहीं 50 डिग्री से. तक पहुंच जाता है।

यह तो सबको पता होगा कि चांद के पास ऊर्जा का अपना कोई स्रोत नहीं है।

उसकी सतह से सूर्य की किरणें परावर्तित होती हैं और चांद हमें चमकता दिखाई देता है - जिसे हम चांदनी कहते हैं।

सूर्य से जितनी ऊर्जा चांद तक पहुंचती है उससे चांद की सतह का तापमान दिन के समय 130 डिग्री से. तक पहुंच जाता है। (चांद पर वायुमण्डल न होने के कारण दिन के समय उसकी सतह इतनी गर्म हो जाती है।) अब चांद पर पहुंची ऊर्जा का एक बहुत ही छोटा हिस्सा परावर्तित होकर पृथ्वी तक पहुंचता है। उसकी मात्रा इतनी कम होती है कि उससे पृथ्वी के तापमान पर कोई खास असर नहीं पड़ता। पिछले कुछ सालों के तापमान के आंकड़ों के विश्लेषण से एक बात साफ तौर पर सामने आई है कि पूर्णिमा की रात को अमावस्या की रात के मुकाबले तापमान 0.035 डिग्री से. ज़्यादा होता है।* अगर सचमुच में सिर्फ इतना-सा बढ़ता है तापमान तो हमें क्या पता चलेगा!

इसका अर्थ यह हुआ कि चंद्रमा की रोशनी से पृथ्वी का तापमान कम नहीं हो सकता, सिर्फ बढ़ सकता है। और शायद तापमान में यह वृद्धि भी इतनी कम है कि हमे इसका अहसास नहीं होता। यानी कि रात में ठंडक का अहसास चांदनी की वजह से नहीं होता। रात को तापमान सिर्फ इसलिए कम होता है क्योंकि उस समय सूर्य की ऊष्मा हम तक नहीं पहुँच पाती।

स्रोत: 'डाउन टू अर्थ', अप्रैल 1995.

पानी पर मलाई नहीं बनती .....

सवाल - दूध और पानी दोनों तरल पदार्थ हैं मगर हम जब दूध को उबालते हैं तो वह उफ़न जाता है और गिरने लगता है, किन्तु पानी को उबालें तो वह क्यों नहीं उफ़नता?

दूध और पानी दोनों ही तरल पदार्थ ज़रूर हैं, पर अलग-अलग किस्म के। दूध में पानी (लगभग 90 प्रतिशत) के अलावा वसा, प्रोटीन तथा और भी कई पदार्थ मौजूद होते हैं। वहीं पानी में (मुख्यत:) होता है सिर्फ पानी। और सिर्फ इसी फर्क की वजह से दूध उबालने के दौरान उफ़न कर बर्तन से बाहर आ जाता है जबकि पानी नहीं उफ़नता। आइए देखते हैं कि कैसे होता है यह।

दूध उबालते समय, उसमें मौजूद पानी में से कुछ भाप के बुलबुलों में परिवर्तित हो जाता है। साथ-ही-साथ दूध के अंदर मौजूद वसा में कुछ वसा दूध से अलग होकर सतह पर मलाई की परत के रूप में फैल जाती है। भाप बुलबुलों के रूप में दूध से ज़्यादा हल्की

और गर्म होने के कारण ऊपर की ओर उठती है, लेकिन सतह पर वसा की परत होने के कारण रुक जाती है और दूध से बाहर निकल नहीं पाती। यह बुलबुले बाहर निकलने की कोशिश में परत को ऊपर ढकेलते हैं जिसके कारण धीरे-धीरे परत ऊपर उठने लगती है, और दूध उफनकर बर्तन से बाहर गिर जाता है। लेकिन वसा की यह परत (मलाई) किसी कारण से टूट जाए तो स्वाभविक है कि दूध नहीं उफनेगा, क्योंकि तब भाप दूध से बाहर निकल सकती है। अब आप यह समझ ही गए होंगे कि घर में दूध औटाने के समय उबलते दूध में चम्मच क्यों चलाते हैं या दूध में एक खाली कटोरी क्यों डालते हैं।

अब पानी की बात करते है। उबलते हुए पानी पर ऐसी कोई परत नहीं बनती इसलिए पानी में बनने वाली भाप और हवा के बुलबुलों को सतह तक पहुंचने में कोई बाधा नहीं आती। एक बार सतह पर आने के बाद बुलबुले फूट जाते हैं और इनके अंदर की भाप बाहर निकल जाती है। यही कारण है कि पानी सिर्फ उबलकर रह जाता है, दूध की तरह उफनकर बर्तन के बाहर नहीं गिरता।

चांदनी वाला सवाल दूसरे अंक में बाबूलाल पाटीदार, ग्राम बोलासा, ज़िला उज्जैन ने पूछा था। तीसरे अंक में जगह की कमी के कारण हम उसका जवाब नहीं दे सके थे। दूध और पानी वाला प्रश्न तीसरे अंक में प्रभाकांत भारद्वाज, जवाहर पारा, बालोद, ज़िला दुर्ग ने पूछा था।

* * *

इस बार का सवाल ....

सवाल -1. केले में बीज क्यों नहीं होते हैं?

रविशंकर कोरकू ठाकुर
छठवीं कक्षा, न.पा.मा.शा. टिमरनी

सवाल-2. हवा हमें क्यों नहीं दिखती है?

इदरीश ख़ान, सातवीं कक्षा,
महेश्वर, ज़िला खरगोन

इन सवालों के जवाब आपके पास भी होंगे। हमें संदर्भ, द्वारा एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद के पते पर लिख भेजिए। सही जवाबों को अग़ले अंक में प्रकाशित किया जाएगा।

हालांकि दोनों के काम एक ही हैं, क्या फ़र्क है सेल और बैटरी में। आइए इसे समझने के साथ बनाकर भी देखें।

सेल, सेल है बैटरी नहीं

प्रमाद उपाध्याय

19वीं शताब्दी में जब ताप बिजली घरों और बांधों से बिजली बनाने की शुरुआत नहीं हुई थी तब छोटे पैमाने पर बिजली प्राप्त करने के लिए बैटरियों का उपयोग किया जाता था। आज भी हमारे रोज़मर्रा के ढेर सारे उपकरण बैटरी से चलते हैं जैसे ट्रांज़िस्टर, टॉर्च, कैलकुलेटर, कैमरे की फ्लैशगन, क्वार्ट्ज़ घड़ियां आदि। बैटरियों के बारे में और बातें करने से पहले आइए खुद एक सेल बनाकर देखें।

सेल बनाकर देखें

सेल बनाने के लिए हमें कुछ सामान की ज़रूरत पड़ेगी जैसे 4-5 बेकार टॉर्च

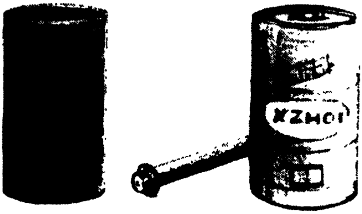

सामग्री: टॉर्च के खराब सेल का कागज़ हटान के बाद निकला जस्ते का बर्तन, इसे काटकर बनी जस्ते की बड़ी पट्टी, एनोड बनाने के लिए ज़रूरी तांबे का तार, टॉर्च का बल्ब, कांच का बीकर, तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल।

सेल, एक या दो मीटर तांबे का तार, कांच का बर्तन, तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल, बिना इंसुलेशन वाले तांबे के तार का एक मोटा टुकड़ा और टॉर्च का एक बल्ब।

सेलों को तोड़कर उनका ज़िंक यानी जस्ते का खोल निकालकर ज़िंक की लम्बी-लम्बी पट्टियां काट लें। ज़िंक की पट्टियों को पानी से धोकर साफ कर लें। उनके किनारे चित्र में दिखाए मुताबिक आपस में फंसा दो और फिर हथौड़ी से अच्छी तरह पीटो ताकि पट्टियां आपस में एक-दूसरे से जुड़ जाएं। इस तरह हमें ज़िंक की एक लम्बी पट्टी मिल जाएगी। एक बात का विशेष ध्यान रखना है कि ज़िंक की पट्टियों से एक लम्बी पट्टी बनाने में बांधने के लिए किसी तार वगैरह का इस्तेमाल नहीं करना है। इस तरह बनाई ज़िंक की लम्बी पट्टी के एक किनारे पर तांबे की तार बांध दो। इसके बाद जोड़ पर अच्छे से मोम लगा दो। यह हमारा *कैथोड* तैयार हो गया। यानी कि ऋण ध्रुव।

अब तांबे का एक बिना इंसुलेशन वाला थोड़ा मोटा तार लो। इस तार के एक सिरे पर तांबे का एक वैसा ही तार बांधो जैसा ज़िंक की पट्टी पर बांधा है। यह हमारा *एनोड* तैयार हो गया। यानी कि धन ध्रुव। अब ऋण और धन ध्रुव से बांधी गई तांबे की पतली तारों से एक टॉर्च बल्ब को जोड़ दो।

इसके बाद बर्तन में तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल लो। अब इसमें पानी डालकर बर्तन को आधा भर लो। इसमें तांबे की तार के धन ध्रुव और ज़िंक की पट्टी के ऋण ध्रुव को डुबो दो। ध्यान रहे कि धन ध्रुव और ऋण ध्रुव से जोड़ी गई तांबे की तारों के जोड़ अम्ल में न डूबें। इसी तरह तांबे का धन ध्रुव और ज़िंक की लम्बी पट्टी एक दूसरे को अम्ल के अंदर न छुएं। यह बन गया हमारा सेल। परिपथ पूरा होने पर बल्ब जलना चाहिए।

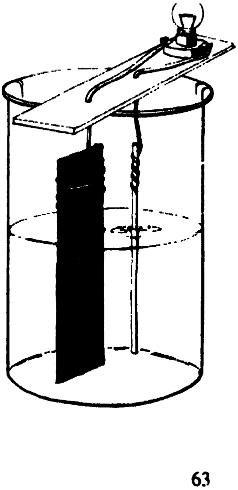

परिपथ: जस्ते की पट्टियों और तांबे के तार से बनाए गए कैथोड और एनोड। बर्तन में तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल और कैथोड व एनोड के बीच तार एवं टॉर्च का बल्ब लगाकर पूरा किया गया परिपथ।

यदि फिर भी बल्ब न जले तो एक बार ध्यान से जांच करनी होगी कि :

- क्या धन ध्रुव वाले तांबे के तार पर कुचालक की पर्त अभी भी चढ़ी हुई है? यदि ऐसा है तो तांबे के तार के ऊपर लगा कुचालक जलाकर निकाल दो।
- जिंक की पट्टी और तांबे का एनोड अम्ल के घोल में एक-दूसरे को छू तो नहीं रहे हैं? यदि छू रहे हों तो उन्हें एक-दूसरे से दूर-दूर करना पड़ेगा।
- परिपथ पूरा करने के लिए जिंक की पट्टी और तांबे के एनोड के साथ जो तार के जोड़ बने हैं वे कहीं अम्ल में तो नहीं डूब गए हैं या जोड़ गीले तो नहीं हो गए हैं? यदि ऐसा हुआ है तो जोड़ को बाहर निकालना होगा।

सेल तो आसानी से बन गया। लेकिन सेल को बनाते समय कुछ सवाल ज़रूर उठे होंगे जैसे, सेल बिजली कैसे बनाता है, एनोड-कैथोड की क्या भूमिका है, और यदि हमने सेल बनाया है; तो बैटरी, सेल से अलग कैसे होती है?

कैसे बनती है बिजली

सेल या बैटरी एक ऐसा तरीका है जिससे रासायनिक ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में बदला जाता है। सेल या बैटरी में सामान्यतः धन और ऋण ध्रुव के अलावा कुछ रसायन भरे जाते हैं जिनकी आपस में क्रिया होती है, जिससे विद्युत धारा बनती है और परिपथ में से होकर बहती है। सेल में दो ध्रुव होते हैं जिन्हें धन और ऋण ध्रुव कहा जाता है। यह दोनों धारा के बहाव के काम आते हैं और इन दोनों का विद्युत परिपथ में जुड़ा होना धारा बहने की एक अनिवार्य शर्त है।

सेलों में ध्रुव धातु या कार्बन के बने होते हैं और उनका आकार भिन्न-भिन्न हो सकता है। ये ध्रुव एक-दूसरे से दूर होते हैं और उनके बीच का स्थान रासायनिक पदार्थों से भरा होता है। यह रासायनिक पदार्थ आपस में क्रिया करते हैं और विद्युत धारा का प्रवाह ऋण ध्रुव से धन ध्रुव की ओर बाहरी परिपथ की सहायता से होता है।

सेल में भरे जाने वाले रासायनिक पदार्थ इलेक्ट्रोलाइट कहलाते हैं। इलेक्ट्रोलाइट वे यौगिक हैं जिनको बनाने वाले अणुओं में इलेक्ट्रॉनों का आदान-प्रदान होता है। नमक (सोडियम क्लोराइड) भी एक इलेक्ट्रोलाइट है। सोडियम का परमाणु एक इलेक्ट्रॉन देता है और क्लोरीन का परमाणु उसे ले लेता है और दोनों आयन जुड़कर सोडियम क्लोराइड यानी नमक का एक अणु बनाते हैं। जब इस इलेक्ट्रोलाइट को पानी में डालते हैं तो पानी इनके परमाणुओं के बीच के जुड़ाव को कम कर देता है और यह इलेक्ट्रोलाइट आयनित हो जाता है यानी सोडियम और क्लोराइड आयन अलग-अलग हो जाते हैं। इलेक्ट्रोलाइट की इसी विशेषता का उपयोग सेल या बैटरी में किया जाता है।

ऊपर बताई गई बातें काफी उलझन भरी लग सकती हैं। इसलिए इन बातों को एक साधारण टॉर्च सेल की सहायता

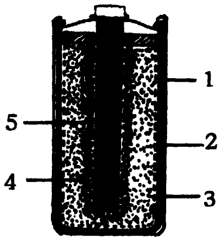

शुष्क सेल की बनावट: 1. सेल के चारों ओर कागज़ का खोल। 2. कागज़ के खोल के बाद लगा जस्ते का एक बर्तन - यह कैथोड का काम करता है। 3. इलेक्ट्रोलाइट (अमोनियम क्लोराइड) की लेई, जो जस्ते के बर्तन के बाद भरी होती है। इन सबके अलावा कार्बन की छड़ (5), जो एनोड का काम करती है, के आसपास मैगनीज़ डाइऑक्साइड (4) का सूखा पाउडर भी भरा रहता है। इस सेल में जस्ते के बर्तन से कार्बन की छड़ की ओर बिजली की धारा बहती है जो बाहरी परिपथ पूरा होने पर हमें मिलती है।

से समझने की कोशिश करें तो शायद आसानी होगी।

बर्तन के अंदर क्या है?

टॉर्च सेल में एक ध्रुव तो कार्बन की छड़ है और दूसरा ध्रुव ज़िंक का वह बर्तन है जिसमें सब कुछ भरा हुआ है। इस बर्तन के ऊपर चढ़ा है गत्ते का एक मोटा आवरण जिस पर कम्पनी का नाम वगैरह लिखा होता है।

ज़िंक के बर्तन के अंदर चारों ओर उससे छूती हुई एक कागज़ की जाली होती है। वैसे ही रखे हुए सेल में (जो अभी परिपथ से नहीं जुड़ा है) यह कागज़ की जाली अंदर के रसायनों और जस्ते के खोल के बीच रासायनिक क्रिया नहीं होने देती। इस तरह धारा के व्यर्थ प्रवाह को रोकने में मदद मिलती है। कागज़ की जाली के बाद होती है इलेक्ट्रोलाइट की पेस्ट (दांत साफ करने वाले पेस्ट की तरह)। इलेक्ट्रोलाइट की पेस्ट अमोनियम क्लोराइड व ज़िंक क्लोराइड को पानी के साथ मिलाकर बनाई जाती है। इस इलेक्ट्रोलाइट पेस्ट और कार्बन की छड़ के बीच मैगनीज़ डाई ऑक्साइड पाउडर भरा रहता है। इस 'खज़ाने' से भरे ज़िंक के बर्तन को ऊपर से कोलतार से सील किया होता है।

अब देखें इस सेल में धारा कैसे पैदा होती है। सेल में ज़िंक का बरतन (ऋण ध्रुव) अमोनियम क्लोराइड की गीली पेस्ट से क्रिया करके ज़िंक आयन बनाता है। इस क्रिया के कारण दो इलेक्ट्रॉन मुक्त होते हैं जो सेल के बाहर के परिपथ से होते हुए कार्बन की छड़ (धन ध्रुव) तक पहुंचते हैं। यहां मैगनीज़-डाइऑक्साइड इन इलेक्ट्रॉनों को ग्रहण करता है। दो इलेक्ट्रॉनों को पाने के बाद यहां भी रासायनिक क्रिया होती है जिसमें पानी भी शामिल होता है और OH^- आयन बनते हैं। OH^- आयन कागज़ की जाली को पार करके अमोनियम क्लोराइड से क्रिया कर अमोनिया गैस बनाते हैं।

यह रासायनिक क्रिया बीच में रुक भी सकती है; अगर बाहरी परिपथ में किसी तरह की कमी हो या परिपथ टूटा हो तो इलेक्ट्रॉन आगे नहीं जा पाएंगे जिससे वे धीरे-धीरे ज़िंक के खोल पर

इकट्ठे होने लगेंगे और ज़िंक की अमोनियम क्लोराइड से क्रिया रुक जाएगी। जब परिपथ पूरा होगा तो ज़िंक फिर से अमोनियम क्लोराइड से क्रिया करने लगता है और विद्युत धारा फिर बहने लगती है। इस सेल में धारा के बहने के लिए ज़िंक से ज़िंक क्लोराइड बनना और मैगनीज़ डाइऑक्साइड (MnO_2) से Mn_2O_3 बनना आवश्यक है।

$$2MnO_2+H_2O+2e^- = Mn_2O_3+2OH^-$$

यानी जब हम सेल से बल्ब जलाते हैं तो ज़िंक घुलकर इलेक्ट्रॉन बना रहा होता है और मैगनीज़ डाई ऑक्साइड इन इलेक्ट्रॉनों को खाकर परिपथ पूरा करता है।

इसी तरह के कई और सेल होते हैं जिनमें दो ध्रुवों में से एक ध्रुव क्रिया करके इलेक्ट्रॉन स्वतंत्र करता है और ये इलेक्ट्रॉन दूसरे ध्रुव पर चले जाते हैं।

प्राइमरी सेल

इस प्रकार के सेल को प्राइमरी सेल कहते हैं। इनमें रासायनिक पदार्थ में उपलब्ध ऊर्जा और रासायनिक क्रिया की गति के अनुसार विद्युत धारा पैदा होती है और रासायनिक पदार्थ धीरे-धीरे समाप्त होते जाते हैं। अंततः सेल काम करना बंद कर देता है।

सेल में खत्म हो गए रासायनिक पदार्थों को बदलकर नए रसायन डाल पाना सम्भव नहीं है और सेलों को चार्ज कर पाना भी सम्भव नहीं होता। टॉर्च, ट्रांज़िस्टर, दीवार घड़ी, कैलकुलेटर और खिलौनों में आमतौर पर इसी तरह के प्रायमरी सेल उपयोग में लाए जाते हैं।

सेकेंडरी सेल

प्राथमिक सेलों में बार-बार रसायन बदल पाना सम्भव नहीं होता है तथा रसायन खत्म होने के साथ धारा की शक्ति भी कम होती जाती है। इन कमियों को दूर करने के लिए ही सेकेंडरी सेलों का विकास हुआ। इस तरह का सेल जब विद्युत धारा देना बंद कर देता है तो यह कहा जाता है कि सेल डिस्चार्ज हो गया है। डिस्चार्ज हो गए सेल में उल्टी दिशा में विद्युत धारा प्रवाहित की जाती है ताकि सेल में उपस्थित रासायनिक पदार्थ अपनी पहले वाली स्थिति में आ जाएं। यानी कि सेकेंडरी सेल के खत्म हो जाने के बाद भी उसे फिर से चार्ज किया जा सकता है। पेचीदा-सी लगने वाली बातों को लेड एसिड बैटरी के उदाहरण से समझने की कोशिश करते हैं, जो एक सेकेंडरी सेल है।

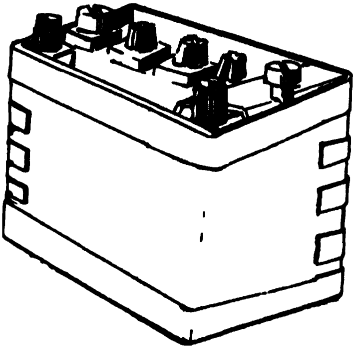

लेड ऐसिड बैटरी

लेड ऐसिड बैटरी का उपयोग कार या बसों में लगने वाली बैटरी में होता है। इस बैटरी में लेड और लेड-डाइऑक्साइड के ध्रुव होते हैं। इन के बीच इलेक्ट्रोलाइट के रूप में गंधक का अम्ल होता है। यहां एक बात महत्वपूर्ण है कि मोटर-कार में लगा डायनमो चलती हुई कार में लगातार बिजली पैदा करता रहता है और बैटरी को देता है। जिससे बैटरी हमेशा चार्ज होती रहती है।

जब लेड ऐसिड बैटरी से बिजली लेते हैं तो उसका लेड, गंधक के अम्ल के सल्फेट से क्रिया करके लेड सल्फेट और इलेक्ट्रॉन बनाता है:

$$Pb + SO_4^{2-} = PbSO_4 + 2e^-$$

दूसरा लेड-डाइऑक्साइड का ध्रुव इन इलेक्ट्रॉनों को लेने के लिए तैयार रहता है:

$$PbO_2 + 4H^+ + SO_4^{2-} + 2e^- = PbSO_4 + 2H_2O$$

जब सारा लेड, लेड-सल्फेट में बदल जाता है तो बैटरी डिस्चार्ज हो जाती है। अब इस तरह की बैटरी को बाहर से इलेक्ट्रॉन देकर चार्ज किया जा सकता है। चार्ज करते समय बैटरी चार्जर, लेड सल्फेट के दोनों इलेक्ट्रोडों में से एक को लेड और दूसरे को लेड-डाइ-ऑक्साइड में बदल देता है। इस तरह बैटरी फिर से अपनी पहले वाली स्थिति में वापस आ जाती है।

सेल-बैटरी, फ़र्क थोड़ा-सा

अब तक हमने खुद एक सेल बनाकर देखा और प्राइमरी-सेकेंडरी सेल के बारे में जानने की कोशिश की। लेकिन एक बात फिर भी रह गई कि सेल और बैटरी में क्या अंतर है? जैसा कि अब तक हमने देखा है कि सेल बिजली पैदा करने की एक इकाई है जिसमें धन और ऋण ध्रुव का एक जोड़ा ज़रूर होता है। बैटरी में एक से ज़्यादा सेल होते हैं यानी धन और ऋण ध्रुव के जोड़े भी एक से ज़्यादा होंगे। या हम यह भी कह सकते हैं कि सेल एक इकाई है तो बैटरी एक समूह है।

प्राय: बोलचाल में हम इस फ़र्क का खास ध्यान नहीं रख पाते हैं और टॉर्च-ट्रांज़िस्टर में लगने वाले सेल को भी बैटरी कहते हैं और कार आदि में लगने वाले काले डिब्बे को भी बैटरी कह कर ही पुकारते हैं।

(प्रमोद उपाध्याय - नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ इम्यूनोलॉजी, दिल्ली में शोधरत्। दिल्ली विश्वविद्यालय के साइंस एजुकेशन सेंटर के साथ महंगे व जटिल उपकरणों के सरल विकल्पों के विकास में सक्रिय।)

* * *

लिखना पढ़ना सिखाने की विधियों के बारे में

सीखने-सिखाने के तरीकों में विकास और सुधार की कोई सीमा नहीं होती है। इसलिए शिक्षा में नवाचार की एक अहम् भूमिका है। लेकिन नवाचार कैसे हों? क्या नई विधियां पुरानी विधियों को कूड़ेदान में फेंककर अपनाई जा सकती हैं? या दूसरे परिवेश में विकसित विधियों को हम वैसे के वैसे कहीं भी अपना सकते हैं? नई और पुरानी विधियों के बीच में क्या संबंध हो सकता है? क्या कोई एक रामबाण विधि हो सकती है? ये सभी सवाल अपनी जगह महत्वपूर्ण हैं।

*प्रस्तुत है इन्हीं प्रश्नों पर रूस के महान साहित्यकार **लेव तोलस्तोय** का एक लेख। यह लेख सन् 1862 में लिखा गया था। जो लोग शैक्षणिक नवाचारों में रुचि रखते हैं, उनके लिए यह आज भी प्रासंगिक है।*

इस लेख के सतही वाचन से ऐसा प्रतीत होता है कि तोलस्तोय रूढ़िगत तरीकों की वकालत कर रहे हैं और नई विधियों की खिल्ली उड़ा रहे हैं। दरअसल वे अधपके नवाचारों का विरोध कर रहे हैं और सैद्धांतिक अध्ययन से उभरे नवाचार को व्यवहार में प्रचलित परम्पराओं से जोड़ने का तथा कक्षा में शैक्षणिक तरीकों में विविधता को बनाए रखने का आग्रह कर रहे हैं।

तोलस्तोय शिक्षा में गहरी रुचि रखते थे। उन्होनें ग्रामीण बच्चों के लिए पाठशालाएं खोलीं और खुद पढ़ाते भी थे। उस दौरान वे अनेक प्रयोग करते रहे और उन पर लिखते भी रहे। यहां यह बताना भी प्रासंगिक होगा कि गांधी जी तोलस्तोय के विचारों से काफी प्रभावित थे और उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में 'तोलस्तोय फार्म' नामक रहवासी शाला चलाई। इसी अनुभव के आधार पर गांधी जी ने 'बुनियादी शिक्षा' के सिद्धांत को खड़ा किया था।

◆ ◆ ◆ पुरानी विधि नई विधि से हमेशा इस कारण उत्कृष्ट होती है कि उसमें सभी नई विधियां समाविष्ट रहती हैं, हालांकि लोगों को उनकी जानकारी नहीं होती, जबकि नई विधि सभी पुरानी विधियों का अपवर्जन कर देती है। नई की तुलना में पुरानी विधि की एक श्रेष्ठता यह भी है कि वह स्वतंत्रतामूलक होती है, जबकि नई विधि बाध्यता पर ज़ोर देती है। आप कहेंगे कि मैं यह क्या बात कर रहा हूं, क्योंकि पुरानी विधि में बेंतें मार-मारकर अक्षर जोड़ना सिखाया जाता है, जबकि नई विधि में बच्चों को 'आप' कहकर संबोधित किया जाता है और उनसे सिर्फ समझने की प्रार्थना की जाती है। बच्चे के लिए यही तो सबसे असहनीय तथा हानिकर हिंसा है, जब उससे भी ठीक वैसे ही समझने को कहा जाता है, जैसे अध्यापक खुद समझता है।

जर्मन सेमिनरी का अध्यापक, जिसने सर्वोत्तम विधि से प्रशिक्षण पाया है, बेधड़क और आत्मविश्वास के साथ कक्षा में आकर बैठता है। पढ़ाई के सभी उपकरण - अक्षर लिखी तख्तियां, पटरियों से युक्त ब्लैकबोर्ड और मछली के चित्र वाली किताब - तैयार हैं। अध्यापक अपने विद्यार्थियों पर एक नज़र डालता है और जान जाता है कि उन्हें क्या समझना चाहिए। वह जान जाता है कि उनकी आत्मा किस चीज़ से बनी है। उसे और भी बहुत सारी बातें मालूम हैं जो उसने सेमिनरी में सीखीं थीं।

वह पुस्तक खोलता है और मछली दिखाता है। "बच्चो! यह क्या है?" कृपया ध्यान दें कि यह Anschauungsunterricht (दृश्य-शिक्षण) है। बच्चे मछली देखकर खुश होते हैं - बेशक अगर उन्होंने अन्य स्कूलों के बच्चों या बड़े भाइयों से नहीं सुना है कि कैसे मछली उन्हें नाकों चने चबवा देगी। कुछ भी हो: वे कहेंगे, "यह मछली है।" "नहीं", अध्यापक उत्तर देता है। (यह सब जो मैं बता रहा हूं कपोलकल्पना या व्यंग्य नहीं है, बल्कि मैं उन्हीं तथ्यों को दोहरा रहा हूं, जो मैंने जर्मनी के निरपवाद रूप से सभी अच्छे स्कूलों में और इंग्लैंड के उन स्कूलों में देखे थे, जहां इस शानदार और उत्कृष्ट विधि को अपनाया जा चुका है।) "नहीं," अध्यापक फिर कहता है और पूछता है: "आप क्या देख रहे हैं?" बच्चे कोई उत्तर नहीं देते। भूलें नहीं कि उनके लिए खामोशी से, अपनी-अपनी जगह पर बिना हिले-डुले बैठे रहना ज़रूरी है - Ruheund gehorsam! (चुप रहो और सुनो!) " हां, तो क्या देख रहे हैं आप?" "पुस्तक" सबसे भोंदू बच्चा बोलता है। जो बुद्धिमान हैं, वे इस बीच हज़ार बार अपना मत बदल चुके हैं कि क्या देख रहे हैं, और अपनी सहजबुद्धि से जानते हैं कि अध्यापक जो सुनना चाहता है, उसे जान पाना उनके लिए कठिन है, और उन्हें कहना चाहिए कि मछली, मछली नहीं है, बल्कि कोई ऐसी चीज़ है, जिसे वे बता नहीं सकते। "शाबाश!"

अध्यापक हर्षपूर्वक कहता है, "बहुत ठीक कहा। पुस्तक है।" बुद्धिमानों का हौंसला बढ़ जाता है और भोंदू खुद भी

नहीं जान पाता कि उसे शाबाशी क्यों दी गई है। "और पुस्तक में क्या है?" अध्यापक पूछता है। बच्चों में जो सबसे चुस्त और तेज़ है, वह भांप जाता है और गर्वमिश्रित हर्ष के साथ जवाब देता है, "अक्षर"। "नहीं","बिल्कुल नहीं, " अध्यापक दुखी आवाज़ में कहता है, "बोलने से पहले थोड़ा सोचना भी

ओर इशारा करता है। "मछली," एक हिम्मती लड़का जवाब देता है। "हां, मछली तो है, पर ज़िंदा मछली नहीं, है न? "नहीं, मछली ज़िंदा नहीं है।" बहुत अच्छा। तो क्या मुर्दा मछली है?" "नहीं" "बहुत ठीक। तो कैसी मछली है?" Ein Bild. यानी तस्वीर है। "बहुत बढ़िया" सभी दोहराते हैं: यह तस्वीर है, और

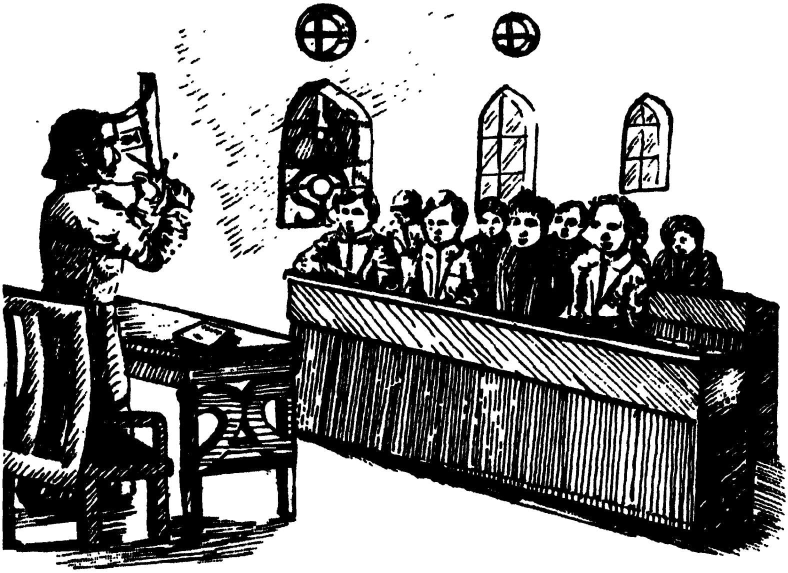

चाहिए।" सभी बुद्धिमान बच्चे फिर मुंह लटकाकर चुप बैठे रहते हैं और जवाब खोजने की बजाए यह सोचते रहते हैं कि अध्यापक का चश्मा कैसा है, क्यों वह उसे उतारता नहीं, क्यों उसमें से देखता रहता है, वगैरह-वगैरह। "हां, तो पुस्तक में क्या है?" सभी चुप रहते हैं। "यह इस जगह पर क्या है?" अध्यापक मछली

सोचते हैं कि अब आगे कुछ नहीं पूछा जाएगा। मगर नहीं, अभी यह भी तो कहना है कि यह तस्वीर है, जिसमें मछली दिखाई गई है। ठीक उसी तरीके से अध्यापक बच्चों से कहलवाता है कि यह तस्वीर है, जिसमें मछली बनी हुई है। उसे लगता है कि बच्चे सोच विचार के बाद ही जवाब दे रहे हैं। उसे एक क्षण के

लिए भी नहीं सूझता कि अगर उसे बच्चों को यह कहने के लिए विवश करने का हुक्म मिला हुआ है कि यह तस्वीर है जिसमें मछली बनी हुई है, या वह खुद ही बच्चों से ऐसा कहलवाना चाहता है तो कहीं आसान होता कि वह इस बुद्धिमत्तापूर्ण उक्ति को उनसे सीधे-सीधे रटवा डालता।

वे बच्चे तो भाग्यशाली हैं, जिन्हें अध्यापक इतने पर ही छोड़ देता है। मैंने खुद देखा है कि कैसै उसने उन्हें यह कहने को बाध्य किया था कि यह मछली नहीं, बल्कि एक चीज़ है - Ein Ding - और यह चीज़ मछली है। कृपया ध्यान दें कि यह अक्षरज्ञान के साथ जोड़ा हुआ नया दृश्य-शिक्षण है, यह बच्चों को सोचने के लिए बाध्य करने की कला है।

जब - दृश्य-शिक्षण खत्म हो जाता है, तो शब्द के विच्छेदन की बारी आती है। तख्तियों पर लिखे अक्षरों से बना हुआ "मछली" शब्द दिखाया जाता है। अच्छे और तेज़ विद्यार्थी सोचते हैं कि यहां वे अपनी प्रतिष्ठा बहाल कर लेंगे, और तुरंत अक्षरों की आकृति तथा नाम याद करने लगते हैं। लेकिन होता कुछ और है। "मछली के आगे क्या है?" सहमे हुए बच्चे कोई जवाब नहीं देते। आखिरकार एक लड़का बड़ी हिम्मत करके कहता है: "सिर"। "बहुत ठीक। मगर सिर कहां है?" "आगे" "बहुत अच्छा। और सिर के बाद क्या है?" "मछली"। "नहीं, फिर सोचिए।" उन्हें कहना चाहिए: शरीर, Leib। यह भी कह दिया जाता है, लेकिन बच्चे अब तक सारी आशा और सारा आत्मविश्वास खो चुके हैं और उनकी सारी बौद्धिक शक्ति यही अटकल लगाने पर केंद्रित है कि अध्यापक क्या सुनना चाहता है, सिर, शरीर और मछली का अंतिम भाग पूंछ। बहुत अच्छा! सभी सहसा बोल उठते हैं, "मछली के सिर, शरीर और पूंछ होते हैं।" "यह अक्षरों से बनी हुई मछली है और यह तस्वीर में बनी हुई मछली है।" अक्षरों से बनी मछली सहसा तीन भागों में बंट जाती है: म, छ और ली। अध्यापक जादूगर जैसे आत्मसंतोष के साथ म को अलग करता है, दिखाता है और कहता है. "यह सिर है. छ शरीर है और ली पूंछ है" और फिर हर अक्षर का उच्चारण बार-बार दोहराता है।

वह यह सलाह देकर बेचारे बच्चों की मदद नहीं करता कि म का उच्चारण मकान, मंदिर से, छ का उच्चारण छतरी, छलनी से और ल का उच्चारण लड़का, लड्डू, आदि से याद कर लें, बल्कि जिद करता है कि वे उनका सही उच्चारण बिना किसी शब्द से जोड़े हुए ही अथवा बिना सचित्र ककहरे की मदद से ही सीखें।

वह उन्हें अक्षर-संयोजनों को, यदि वे उन्हें नहीं जानते, तो याद कर लेने और जो परिचित हैं, उसे पढ़ने की इजाज़त नहीं देता। संक्षेप में, वह समझता है कि मछली - पुस्तक विधि के अलावा और विधियां जानना उसका कर्तव्य नहीं है और इसलिए वह और सब कुछ की अपेक्षा करता है।

अक्षरज्ञान पाने के लिए विधि है, और सोचने की शक्ति के आरंभिक विकास

के लिए भी दृश्य-शिक्षण है। दोनों को संयोजित किया जाता है और बच्चों को इन सुई की आंखों से गुज़रना पड़ता है। हर उपाय किया जाता है कि स्कूल में इस मार्ग पर चलने से जो विकास होता है, उसके अलावा और कोई विकास न होने पाए। हर तरह की हरकत, शब्द, प्रश्न वर्जित हैं। Die Hande fein zusammen! Ruhe und Gehorsam! हाथ ठीक से रखो! चुप रहो और सुनो! ऐसे लोग भी हैं, जो "ब+अ = बा" विधि का मज़ाक उड़ाते हुए कहते हैं कि यह सोचने की क्षमता खत्म करनेवाली विधि है, कि इसके बजाए Lautier-methode in Verbindung mit Anschauungsunterricht (स्वनिक और दृष्टिमूलक विधियों को मिलाकर बनाई हुई विधि) इस्तेमाल की जानी चाहिए, यानी वे प्रार्थनाओं तथा भजनों के बजाए यह रटने की सलाह देते हैं कि मछली एक चीज़ है, कि म सिर है, छ शरीर है तथा ली पूंछ।

अंग्रेज़ और फ्रांसीसी शिक्षाशास्त्री ज़बानतोड़ होने के बावजूद दृश्य-शिक्षण शब्द का सगर्व उच्चारण करते हैं और कहते हैं कि वे उसे शिक्षण के बिल्कुल आरंभ में ही इस्तेमाल करने लग जाते हैं। मगर हमें यह 'दृष्य शिक्षण' बिल्कुल ही अस्पष्ट चीज़ लगती है। सचमुच, यह अध्यापन की दृष्टिमूलक विधि क्या है? अध्यापन क्या दृष्टिमूलक के अलावा किसी और प्रकार का भी हो सकता है? शिक्षण में पांचों इंद्रियां भाग लेती हैं और इसलिए वह दृष्टिमूलक पहले भी था और आगे भी रहेगा।

यूरोपीय स्कूल के संदर्भ में, जो

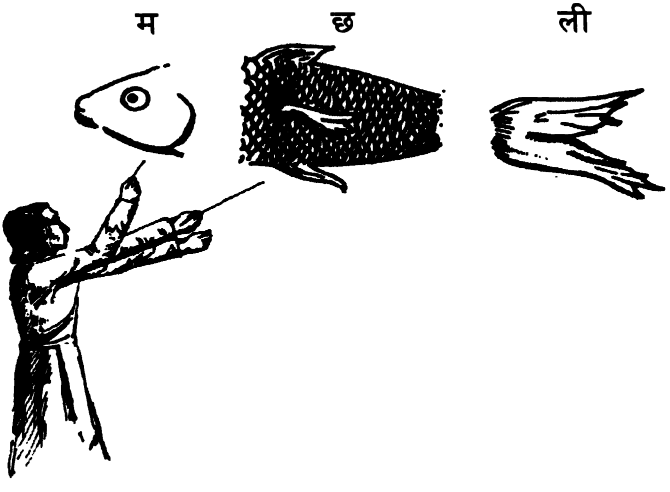

मध्ययुगीन आकारवाद से मुक्ति पा रहा है, दृष्टिमूलक शिक्षण की बात समझ में आ सकती है, क्योंकि उसे पहले के शिक्षण के विरोध में रखा जाता है। इसी तरह उसके संदर्भ में वे गलतियां भी क्षम्य हैं, जो पुरानी विधि की मात्र बाह्य युक्तियों को बदलकर यथावत् बनाए रखने की शक्ल में प्रकट होती हैं। मगर मैं दोहराता हूं कि हमारे लिए तो दृश्य-शिक्षण की नकल करने में कोई तुक नहीं है।

सारे यूरोप में इस दृश्य-शिक्षण का गंभीर अध्ययन कर लेने पर भी मुझे अभी तक उसमें कोई खूबी नहीं दिखाई दी है, सिवाय इसके कि अगर उभारदार मानचित्र उपलब्ध है, तो भूगोल को उसकी मदद से पढ़ाया जाना चाहिए, रंगों को रंगों की मदद से, रेखागणित को आरेखों की मदद से, प्राणी-विज्ञान को जीव-जंतुओं की मदद से, आदि-आदि और यह एक ऐसी बात है, जिसे हममें से हर कोई जन्म से ही जानता है तथा जिसके लिए दिमाग खपाने की तनिक भी ज़रूरत नहीं है, क्योंकि प्रकृति इसमें अपना दिमाग बहुत पहले ही खपा चुकी है, जिसकी वजह से इसे हर कोई जानता है, बेशक अगर उसके दिमाग में उल्टी बातें घर न कर गई हों।

और इन त ा इनके ढंग की अन्य विधियों को कुछ निश्चित मान्यताओं के अनुसार अध्यापक प्रशिक्षित करने की विधियों को अपनाने की सलाह हमें भी दी जा रही है - हमें, जो 19वीं सदी के उत्तरार्ध में अपने स्कूल आरंभ कर रहे हैं, इतिहास के बोझ तथा गलतियों से अभी तक मुक्त नहीं हैं, उससे बिल्कुल भिन्न चेतना रखते हैं, जिसपर यूरोपीय स्कूल का ढांचा टिका हुआ था। इन विधियों के झूठी होने की बात और वे विद्यार्थियों की आत्मा पर जो ज़ोर ज़बरदस्ती करती हैं, उसकी बात अगर जाने भी दें, तो भी सवाल तो रहता ही है: हम, जिनके यहां बाराखड़ी विधि से पादरी छह महीने में लिखना पढ़ना सिखा देता है, Lautier-anschauungsunterric (स्वनिक तथा दृष्टिमूलक विधियो) को मिलाकर बनाई हुई विधि को भला क्यों अपनाएं, अगर उससे लिखना-पढ़ना सीखने में साल भर से भी ज़्यादा लग जाता है?

हम ऊपर बता चुके हैं कि हमारे मत में हर विधि अच्छी है और हर विधि एकांगी है। हर विधि किसी न किसी भाषा तथा जाति के लिए अधिक उपयुक्त होती है।

तो रूसी भाषा लिखना-पढ़ना सिखाने के लिए सर्वोत्तम विधि कौन-सी है? यह न तो नई स्वनिक विधि, न सबसे पुरानी वर्णमाला, वर्ण-संयोजनों तथा अर्थों को रटने की विधि, न स्वरों की विधि और न ही जोलोतोव की विधि है। संक्षेप में, सर्वोत्तम विधि कोई नहीं है। किसी भी अध्यापक के लिए सर्वोत्तम विधि वह है, जिसे वह सबसे अच्छी तरह जानता है। अन्य जो विधियां वह जानता है या जिन्हें उसने ईजाद किया है, उन्हें पूर्वोक्त विधि से आरंभ किए गए अध्यापन में मददगार ही होना चाहिए। हर जाति और हर भाषा के लिए कोई एक विधि ही अन्य विधियों की अपेक्षा अधिक उपयुक्त होती

है। इस विधि को मालूम करने के लिए यही जानना काफी होगा कि वह जाति सबसे ज़्यादा समय तक किस विधि के अनुसार सीखती रही है। यही विधि उस जाति या जनता की प्रकृति के अनुरूप होगी। हमारे लिए यह वर्णमाला, वर्णमाला संयोजन तथा अर्थ याद करने की विधि है; जिसमें अन्य विधियों की अच्छी बातों का समावेश करके पहले से बेहतर बना सकते हैं। हर व्यक्ति को, ताकि वह जल्दी से लिखना-पढ़ना सीख सके, औरों से बिल्कुल भिन्न ढंग से पढ़ाया जाना चाहिए, और इसलिए हरेक के लिए अलग, विशिष्ट विधि होनी चाहिए। एक को जो दुर्लंघ्य बाधा लगती है, दूसरे को वह बिल्कुल नहीं रोक पाती। एक विद्यार्थी की स्मृति प्रबल होती है और उसके लिए व्यंजन की स्वरहीनता को समझ पाने की बजाए बाराखड़ी याद करना अधिक आसान होता है; दूसरा स्वनिक, सबसे तर्कसंगत विधि को बड़ी सहजता से समझ जाता है; तीसरे का सहजज्ञान या सहजबुद्धि प्रबल होती है और वह पूरे शब्दों को पढ़ते हुए शब्दों के संयोजन को हृदयंगम कर लेता है।

सर्वोत्तम अध्यापक वह होगा जिसके पास ऐसी हर चीज़ का स्पष्टीकरण तैयार होगा, जिसने विद्यार्थी को रोका था। ये स्पष्टीकरण उसे अधिकतम विधियों का ज्ञान, नई विधियां विकसित करने की क्षमता और जो सबसे मुख्य बात है - किसी एक विधि में अंध आस्था नहीं बल्कि यह दृढ़ विश्वास प्रदान करते हैं कि सभी विधियां एकांगी हैं और सर्वोत्तम विधि वह होगी, जो विद्यार्थी के सामने आने वाली सभी संभव कठिनाइयों का समाधान करती है, यानी जो विधि नहीं बल्कि कला और प्रतिभा है।

लिखना-पढ़ना सिखानेवाले हर अध्यापक को एक विधि का, जनता के बीच विकसित हुई विधि का, पक्का ज्ञान होना चाहिए और उसे अपने अनुभव की कसौटी पर परखना चाहिए। उसे अधिक से अधिक विधियां जानने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहना चाहिए। और उन्हें आनुषंगिक साधन ही समझना चाहिए। (उसे चाहिए कि विद्यार्थी की समझने की कठिनाइयों को उसकी कमी न माने, बल्कि अपने अध्यापन की कमी माने और अपने में नई शिक्षण युक्तियां ईजाद करने की योग्यता विकसित करे।) हर अध्यापक को मालूम होना चाहिए कि हर नवाविष्कृत विधि मात्र एक सीढ़ी ही है, जिसपर केवल इसीलिए रुका जाना चाहिए कि आगे जाना है। उसे जानना चाहिए कि अगर वह स्वयं ऐसा नहीं करेगा, तो कोई दूसरा उस विधि को सीखकर उसके आधार पर आगे बढ़ जाएगा, और यह भी कि चूंकि अध्यापन एक कला है, इसलिए पूर्णता प्राप्त कर पाना असंभव है, जबकि विकास और सुधार की कोई सीमा नहीं है।

पुस्तक - शिक्षाशास्त्रीय रचनाएं, लेखक - लेव तोलस्तोय
अनुवादक - बुद्धिप्रसाद भट्ट, प्रकाशक - प्रगति प्रकाशन मास्को, मूल्य - 15 रुपए

शिक्षक प्रशिक्षण का मतलब सीखे तरीकों को कक्षा के ऊपर बिल्कुल वैसे ही थोप देना नहीं है, बल्कि बच्चों की समझ, उनके सीखने की क्षमता के आधार पर किसी गतिविधि में बदलाव लाना है।

सीखने की क्या गति और क्या विधि

● वेणु ऐंडले

आज पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों को कहानी सुनाई। सबसे पहले जंगल के बारे में चर्चा हुई, फिर पुस्तक के कवर पर छपे शेर के चित्र पर बच्चों के साथ विस्तृत बातचीत हुई। पहली कक्षा के बच्चे स्वयं बोल रहे थे:

"बहनजी मैं बंदर देखा।"

"शेर! हां बहनजी, हमने भी देखी थी। जंगल में हाथी भी देखी थी।"

चुनमुन - "राधेश्याम के साथ गए थे जंगल में तो कोय नई देखी।"

दूसरी कक्षा की ललिता, "बहनजी हमारे कक्का ने देखी, शेर अपन को खाती है।"

चंद्रभान - "बहनजी, एक शेर ने बैल को मार दई, खूब बड़ा मुंह फाड़ती है खाने कू।"

इस प्रकार प्रत्येक चित्र पर बहुत चर्चा हुई।

हाथी के बारे में कहा गया, "हाथी कू नरियल दई तो फोड़ दई।"

ललिता - "बहनजी सरकस में हाथी देखी, उसके ऊपर खूब सजी लड़की बैठी थी।"

मंगलेश - "हाथी तो हमारे घर आया था, खूब बड़ा था।"

चंद्रभान ने पूछा, (एक हाथी को दिखाते हुए जिसे चित्र में नहाता हुआ नहीं दिखाया गया था) - "ये काय को नहीं नहाती बहनजी?"

इसके बाद कितने छोटे हाथी, कितने बड़े हाथी, कितने छोटे हिरण, कितने बड़े हिरण इस सब पर बातचीत हुई।

बंदर का चित्र देखकर गुरूदयाल बोला - "बहनजी या मोड़ी जैसी दिखे है।"

कक्षा में बहुत मज़ा आया - सभी बच्चों की पूर्ण भागीदारी थी। इसी तरह यह कहानी सूक्ष्म निरीक्षण से धीमे क्रम से आगे बढ़ती रही।

(प्राथमिक शाला शिक्षिका, गंगा गुप्ता की डायरी का अंश)

चित्र पर बातचीत का यह भी एक उदाहरण है जिसमें पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों को उनकी शिक्षिका बातचीत करने के लिए प्रोत्साहित कर रही है। चित्र पर बात करना यहां एक ऐसी गतिविधि बन गई है जिसमें बच्चों में अभिव्यक्ति, ध्यान से देखकर अवलोकन करना जैसी क्षमताओं को प्रोत्साहन देने की कोशिश हो रही है। सबसे महत्वपूर्ण बात जो हो रही है वह यह कि बच्चे चित्र देखकर इतनी बातचीत कर रहे हैं। अपने अनुभवों, अपनी देखी-सुनी बातों को इन चित्रों से जोड़ रहे हैं- जिससे सहज ही उनकी भाषा के उपयोग का अभ्यास हो रहा है।

वे एक विषय पर पूर्वजानकारी समेट कर शब्दों में डालते हैं, सुनाते हैं तो स्वाभाविक है कि उस विषय के बारे में हर बच्चे की एक व्यापक समझ बन सकती है। एक स्थिति वह भी हो सकती थी कि शिक्षिका इन जानवरों के बारे में कुछ बातें अपने ढंग से बच्चों को बता देती और बच्चे सुन लेते। शायद कुछ न भी सुनते।

लेकिन यह स्थिति कुछ अलग है। यहां इस प्रक्रिया में बच्चों की ज़ोरदार भागीदारी हैं। वे खुलकर भाग ले रहे हैं। यही तो सीखने की प्रक्रिया का मूल आधार है।

अब एक और शिक्षक का अनुभव पढ़िए:

कक्षा में कुछ करना है अथवा पढ़ाते-पढ़ाते बोर हो जाने की दशा में मैं परिवर्तन के बतौर खेल गतिविधियां करवाया करता था। 'बोलो भाई कितने, आप बोलो जितने' जैसे खेल खिलाने में मुझे कोई रुचि नहीं थी। लेकिन जब मैं तीसरी कक्षा में यह करवा रहा था तो मुझे इस खेल में कुछ और संभावनाएं नज़र आई।

मैंने इसके लिए पहले बच्चों को एक गोले में खड़ा किया और उन्हें बताया कि आप लोग गोले में दौड़ते रहिए और जब मैं आपसे पूछूंगा - 'बोलो भाई कितने' जवाब में आप लोग मुझसे कहेंगे - 'आप बोलो जितने'। इसके बाद मैं जो भी संख्या बोलूं आप लोग उतने का समूह बना लेना। जैसे मैं 'चार' बोलूं तो आप लोग चार-चार के समूह बना लेंगे और जो बच्चा या बच्चे समूह में शामिल नहीं हो पाएंगे वे आऊट हो जाएंगे और उन्हें गोले से बाहर कर दिया जाएगा।

बड़े बेमन से मैंने यह खेल करवाया। मुझे लगा कि चलो कुछ तो अपना समय पास हो गया और बच्चों को भी मज़ा आया। कुछ बच्चे भी बेमन से खेल रहे थे। इसके बाद छुट्टी हो गई। अगले दिन बच्चों ने फिर कहा कि कल वाला खेल खिलवाइए। मैंने कई बहाने बनाए, जैसे - पहले ही पीरियड में यह सब नहीं होगा

......, अभी नहीं, बारिश होने वाली है ......, तुम लोग खाना खाकर आ रहे हो तकलीफ होगी, पहले हम पढ़ेंगे आखिरी पीरियड में खेलेंगे .... आदि।

इस सबके बाद भी बच्चे नहीं माने तो मैंने बच्चों की बात मानकर दोबारा इसी खेल को खिलवाया। बीच–बीच में मेरे मन में कुछ प्रश्न आते गए जिन्हें मैं बच्चों से पूछता गया तथा उनके उत्तरों से प्रोत्साहित होकर मैं और प्रश्न पूछने लगा। मुझे लगा यह खेल संभावनाओं से भरा हुआ है। मैंने कुछ इस तरह के प्रश्न पूछे -

जो बच्चे पांच-पांच का समूह नहीं बना पाए थे उनसे मैंने पूछा, "तुम्हारे समूह में कितने बच्चे कम हैं?"
बच्चों ने उत्तर दिया, "दो बच्चे।"
"यदि दो बच्चे और मिल जाए तो तुम्हारे समूह में कितने बच्चे हो जाएंगे?"
उत्तर मिला, "पांच बच्चे।"
मैंने पूछा, "कुल कितने बच्चे खेल रहे हैं?"
सबने अपने-अपने ढंग से गिनना शुरू किया, जवाब 43 था।
"कितने बच्चे आऊट हो गए?"
बच्चों ने उत्तर दिया, '3'
"यदि 2 बच्चे और बाहर निकाल दिए तो कितने हो जाएंगे?"
बच्चों ने कहा, '5'
इस तरह कुछ और प्रश्न पूछे -
"कुल कितने समूह बने?"
बच्चों ने बताया, "8 समूह।"

"एक समूह में कितने बच्चे हैं?"
"पांच बच्चे", बच्चों ने जवाब दिया।
"आठों समूहों में कुल कितने बच्चे हो गए?"
बच्चों ने कुछ क्षणों के बाद बताया, '40'

इस तरह की गिनती की गतिविधियां करवाते हुए मैं खेल में जोड़–घटाना, गुणा-भाग आदि करवाने लगा और मुझे यह अरोचक खेल भी रोचक लगने लगा। इस खेल में जो बच्चे आऊट हो जाते थे वो बाहर खड़े-खड़े देखते रहते थे। उनके चेहरे की उदासी देखकर मुझे लगा कि कुछ करना चाहिए। इसके बाद मैं उन बच्चों को बुलाकर गोले के बीच में खड़ा कर लेता और उनसे कहता था कि वे गोले में घूमने वाले बच्चों से पूछें 'बोलो भाई कितने'। अब गोले के अंदर खड़े बच्चे गोल-गोल घूमने वाले बच्चों से पूछते 'बोलो भाई कितने' और गोले में घूमने वाले बच्चे कहते 'आप बोलो जितने'। इस तरह बच्चे आपस में ही खेलने लगे, और सभी बच्चे क्रियाशील हो गए लेकिन व्यवस्था बनाने और निर्देश देने के लिए मुझे वहां खड़े रहना पड़ता था।

(हरदा के प्राथमिक स्कूल शिक्षक दिनेश शुक्ला की डायरी का अंश)

'बोलो भाई कितने' खेल शिक्षण-प्रशिक्षण के दौरान शिक्षकों के साथ खेले जाने वाले खेलों में से एक है। प्रशिक्षण में जब शिक्षक स्वयं खेलते हैं तो अपने अनुभवों से उसकी प्रक्रिया को महसूस करते हैं, आत्मसात करते हैं। फिर उस खेल को कक्षा में करवाने का उद्देश्य शायद ज़्यादा स्पष्ट हो जाता है - चाहे वह बच्चों को मज़ेदार गतिविधियों में लगाए रखने का हो या फिर गिनती सिखाने का तरीका। प्रशिक्षण में इन शिक्षक ने यह खेल ज़रूर खेला होगा पर वे उसे कक्षा में कैसे करवाना चाहता हैं इसकी उन्हें पूरी छूट रही। और कक्षा में किस तरह करवाया यह भी आपने पढ़ा। यह ज़रूरी लगता है कि शिक्षक को गतिविधि अपने ढंग से करवाने की स्वतंत्रता हो ताकि वह परिस्थिति के कई पहलुओं पर गौर करके कक्षा के अनुकूल ढंग से करवा पाए। जैसे:

- कक्षा में बच्चों की संख्या
- बच्चों की रुचि
- बच्चों की समझ का स्तर
- उनकी किन क्षमताओं के विकास पर ध्यान देना है आदि।

यही उसका कौशल है और यही उसके प्रशिक्षण का उद्देश्य।

जंगल की कहानी सुनानी थी तो सुनाकर वहीं समाप्त की जा सकती थी लेकिन जैसे ही शिक्षिका ने कहानी के

चित्रों पर बातचीत शुरू की तो बच्चों के बीच सोचकर अभिव्यक्त करने की क्षमता का भी अभ्यास होने लगा। दूसरे शिक्षक ने बच्चों के लिए एक मज़ेदार गतिविधि को गिनती तक सीमित न रख कर गणित की विभिन्न क्रियाओं के अभ्यास का माध्यम बना दिया।

यह ज़रूरी है कि शिक्षक में इतना खुलापन और समझ हो कि वह गतिविधि के किसी निश्चित उद्देश्य तक सीमित न रह कर उसको थोड़ा और आगे बढ़ाने की कोशिश करे। जहां उसके विश्वास में कुछ कमज़ोरी हो (जैसे - यह शंका कि फलां गतिविधि से क्या हो जाएगा?) वहां भी गतिविधि को आगे बढ़ाकर या नए प्रयोग कर एक अलग परिस्थिति में अपने अविश्वास की जांच-परख के लिए तैयार हो। क्या पता बच्चों को कौन-सी चीज़ मज़ेदार लगे और वे भी उस गतिविधि को आगे बढ़ाने में भागीदारी करने लगें!

इन दोनों गतिविधियों में बच्चों के लिए क्या था? हम यह कह सकते हैं कि दोनों गतिविधियां अधिक-से-अधिक बच्चों को अपने साथ लेने में सफल रहीं। यानी उनमें इतना खुलापन था कि हर बच्चा जो कुछ कहना चाहता था वह कह पाया। गतिविधि का अपना कोई बंधन नहीं था कि उनमें बातचीत एक ही ढंग से हो सकती थी। और न ही शिक्षकों ने बच्चों पर किसी तरह के उत्तर का दबाव डाला। इससे भाषा के विकास में जो सहयोग मिला वह तो मिला, साथ ही बच्चों का आत्मविश्वास भी बढ़ा होगा। बच्चे शिक्षक से डरते हों ऐसा भी नहीं था। तभी तो वे बार-बार शिक्षक से कह सकते थे कि उनका खेलने का मन है। क्या इसे शिक्षक और बच्चों में एक आपसी सम्मान और विश्वास का संबंध कहें? जो भी हो ऐसा लगता है कि इस स्थिति में बच्चों ने सीखा भी मन से होगा, शायद ज़्यादा ठोस तरह से। शायद सबसे ज़रूरी बात यही है कि शिक्षक और बच्चों में ऐसे सहज संबंध हों कि वे आपस में सीखने की प्रक्रिया को जानदार बनाते रहें और आगे बढ़ाते रहें (फिर हम सही विधि, सही प्रशिक्षण, सही पाठ्यक्रम जैसे बंधनों में क्यों उलझे रहते हैं?) यहां एक बात महत्वपूर्ण लगती है कि बच्चों को जब कुछ करने में मज़ा आता है तभी शायद शिक्षक का भी कुछ नया सोचने, कुछ नया जोड़ने का उत्साह बढ़ता है ..... वह भी प्रेरित होता है। शायद यह आपसी प्रेरणा और उत्साह का चक्र ही सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाता है।

(वेणु एंडले- एकलव्य के प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम 'प्राशिका' से संबद्ध)

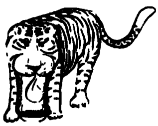

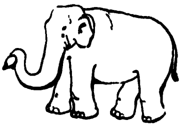

मानसरोवर झील का दैत्य

● बरट्रैण्ड आर. ब्रिनले

भावानुवाद: सुशील जोशी

जीतू ने डांट से बचने के चक्कर में मानसरोवर झील में दैत्य देखने की गप्प तो मार दी, लेकिन फुरसती वैज्ञानिक क्लब के सदस्यों को न जाने क्या सूझी कि उन्होंने इसे आधार मानकर एक दैत्य बना डाला - उसे लेकर शहर में जो तहलका मचा तो बस....ज़हां देखो दैत्य की चर्चा! और भी बहुत कुछ हुआ इस विज्ञान गप्प में .....

जीतू को अफवाह उड़ाने का कोई शौक नहीं था। न ही उसकी नीयत में कोई खोट थी। वो तो घर लौटने में देरी हो गई - तो डांट से बचने के लिए उसने कह दिया। घर लौटा तो मां-बाप नाराज़ थे। उसने उन्हें समझाने के लिए कह दिया कि झील में एक विशालकाय सांप जैसी कोई चीज़ थी। उसको देखने के चक्कर में उसे देर हो गई। मां-बाप ने तो सुनी-अनसुनी कर दी। पर जीतू की बहनें पीछे पड़ गईं। एक-एक बात खोद-खोद कर पूछने लगीं। कैसा था, कितना बड़ा था, रंग कैसा था, और भी न जाने क्या-क्या।

अपने झूठ को छिपाने के लिए जीतू ने बड़े विस्तार से एक-एक चीज़ का वर्णन किया। झूठ के साथ यही होता है। एक झूठ बोल दिया, तो उसे छिपाने के लिए हज़ार झूठ बोलने पड़ते हैं। बहनों के सवालों का जवाब देते-देते जीतू ने उस काल्पनिक चीज़ का ऐसा बढ़िया खाका बनाया कि बहनें प्रभावित हो गईं। बहनों ने बात को शहर भर में फैला दिया। दूसरे दिन तक तो गली-गली में जीतू और इस दैत्य की चर्चा होने लगी। एक अखबार ने तो जीतू का फोटो भी छाप दिया। जीतू की बताई बातों के आधार पर एक चित्रकार ने उस दैत्य का चित्र भी बनाया। हर तरफ यही बात थी कि मानसरोवर झील में एक दैत्य देखा गया।

यह बात रामनिवास के कानों तक भी पहुंची। रामनिवास पचमढ़ी के फुरसती वैज्ञानिक क्लब का उपाध्यक्ष था और क्लब के अनुसंधान, मतलब जांच-पड़ताल विभाग का प्रमुख था। क्लब के किसी सदस्य ने जीतू की बातों पर विश्वास नहीं किया था। वे जीतू की आदतों से अच्छी तरह परिचित थे। परन्तु शाम को क्लब की बैठक में जब रामनिवास ने कहा कि हम सचमुच एक दैत्य बना सकते हैं, तो सभी चौंक पड़े। "सचमुच का दैत्य!" उनके मुंह से निकला। इशहाक का कहना था कि यह पागलपन है। दैत्य भी भला कभी तैरता है?

रामनिवास क्लब के कमरे में रखे कबाड़े की तरफ घूर रहा था। जब भी

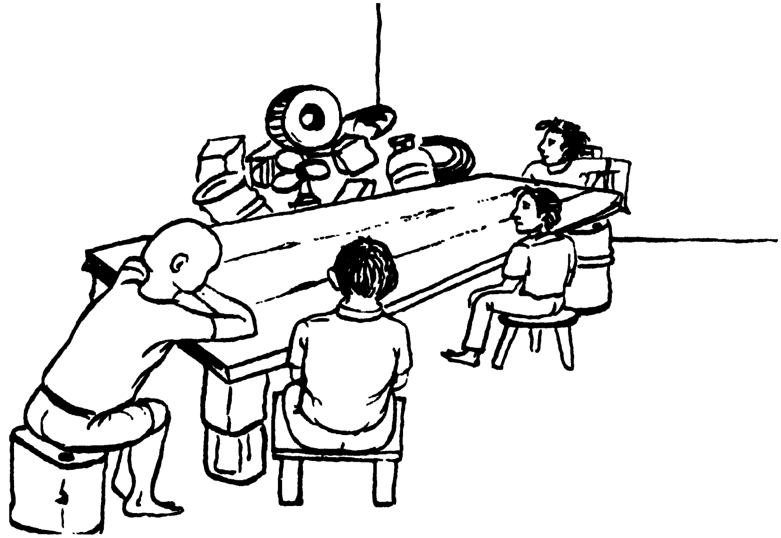

उसके मन में कोई नया विचार आता, तो वह ऐसे ही कबाड़े की तरफ घूरने लगता था। थोड़ी देर घूरने के बाद उसने कहा, "हमें बस थोड़ा लोहे का तार और कैनवास लगेगा और गयादीन की डोंगी।" गयादीन हमारे क्लब का अध्यक्ष था। एक तो हमारे क्लब का ऑफिस उसके पिता के कबाड़खाने में था। दूसरी बात यह थी कि जब भी हम कोई ऊलजलूल हरकत कर बैठते, तो गयादीन ही हमारी नैया पार लगाता था।

हम सबको रामनिवास का विचार बहुत पसन्द आया। इसलिए तय हुआ कि दैत्य बनाया जाए। तीन दिन, दिन-रात एक करके हमने दैत्य लगभग बना डाला। दैत्य बनाने का काम झील के पास की झाड़ियों में किया गया। चुपके-चुपके। रामनिवास और गयादीन ने मिलकर हल्की लकड़ी और दूसरे कबाड़े को जोड़-जोड़कर एक ढांचा बनाया। यह एक बड़े मगरमच्छ के समान दिखता था। इसको हमने डोंगी पर कस दिया। फिर इस ढांचे पर तार लपेटा गया और ऊपर से कैनवास से ढक दिया गया। इसको रंग दिया गया। फिर टीन के चमकीले डब्बे यहां-वहां चिपका दिए गए। बस, डरावना दैत्य तैयार हो गया। दूर से देखकर कोई भी इससे डरकर भाग जाता।

रामनिवास का दिमाग तो कुलांचे भर रहा था। बड़ी मुश्किल से उस पर लगाम लगाई गई। पर ना-ना करते उसने दैत्य के सिर पर दो लाल-लाल चमकदार आंखें फिट कर ही दीं। वास्तव में ये दो लेंस थे और जिनके पीछे बल्ब लगे हुए थे। गयादीन ने बिजली का ऐसा परिपथ (सर्किट) तैयार किया, जो अपने आप बनता-टूटता रहता था। इससे आंखों की रोशनी जलती-बुझती रहती थी।

अब दैत्य पूरी तरह तैयार था। हम चार लोग उसके अन्दर मुश्किल से बैठकर चप्पू चला सकते थे। जब सब-कुछ तैयार हो गया तो इसको आज़माने की बात आई। पहले तो झाड़ियों के अन्दर ही एक गड्ढे में इसे चलाकर देखा गया। जब सब कुछ ठीक-ठाक रहा, तो तय हुआ कि अब खुली झील में इसका परीक्षण किया जाए।

जब ये सारी तैयारियां चल रहीं थीं, तब पचमढ़ी नगर में लोग दैत्य की चर्चाएं कर रहे थे। लोग एक-दूसरे को बताते रहते थे कि उन्होंने भी झील में कुछ अजीब-सी चीज़ देखी थी। कोई कुछ कहता, तो कोई कुछ। सब अपने-अपने हिसाब से दैत्य का वर्णन करते। वर्णन में एक-दो बातों को छोड़कर बाकी जीतू की बताई बातें ही होतीं। धीरे-धीरे बात इतनी फैली कि एक राष्ट्रीय अखबार का पत्रकार पचमढ़ी पहुच ा। उसने लोगों से बातचीत की और अखबार में खबर छापी। फिर वह दैत्य को अपनी आंखों से देखने के लालच में रोज़ झील के किनारे बैठा रहता।

और आखिर वह दिन आ गया जब उस दैत्य को खुले में लाया जाना था। इसके लिए शनिवार शाम का वक्त चुना गया क्योंकि शनिवार को झील के आसपास काफी भीड़भाड़ होती है। यह तय हुआ कि शाम के धुंधलके में दैत्य को झील की सैर कराई जाएगी और लोगों से थोड़ा अलग हटाकर ही रखा जाएगा। हमारा एक साथी लोगों के बीच घूमता रहेगा ताकि पता लग सके कि लोगों पर कैसा असर पड़ा।

शाम होने तक सारी तैयारियां पूरी कर ली गईं। थोड़ा अंधेरा होते ही चार साथी दैत्य के अन्दर चप्पू लेकर बैठ गए।

रामनिवास आगे दैत्य के मुंह के पास जा बैठा। वही दैत्य को दिशा दिखाने का काम करने वाला था। साथ-साथ वह झील के किनारे पर नज़र रख रहा था कि कब लोग दैत्य को देखते हैं।

धीरे-धीरे धक्का देकर दैत्य को झील में लाया गया। आंखों के लाल बल्ब जलने-बुझने लगे। दैत्य झील में चल निकला। थोड़ी देर बाद रामनिवास चिल्लाया, "लोगों ने देख लिया है, वे सब उछल-उछल कर इधर ही एक-दूसरे को इशारे कर रहे हैं।" रामनिवास इतना उत्तेजित हो गया कि उसे डोंगी के संतुलन का ध्यान ही न रहा। लोग कितनी उछल-कूद कर रहे थे, पता नहीं, पर रामनिवास डोंगी के अंदर इतना फुदकने लगा कि डोंगी डगमग होने लगी। बाकी चार लोगों को चप्पू छोड़कर रामनिवास को पकड़ना पड़ा, नहीं तो दैत्य के साथ पांचों की जल-समाधि हो जाती। वैसे बाकी चार लोग भी एक नज़र देखना चाहते थे कि झील के किनारे पर लोगों में कैसी प्रतिक्रिया हो रही है।

कुछ समय तक दैत्य को इधर-उधर घुमाने के बाद वापस झाड़ियों में खींच लिया गया। आज का प्रयोग बहुत सफल रहा था। दूसरे दिन तक पूरे शहर में खबर फैल गई। सब लोग दैत्य का वर्णन करने में एक-दूसरे से होड़ करने लगे। एक व्यक्ति ने जितना देखा, दूसरा उससे ज़्यादा बताता। शहर के जाने-माने वैज्ञानिक भी इस बारे में चर्चा करने लगे कि आखिर यह कौन-सा जीव है, किस समूह का है, कहां पाया जाता है, वगैरह-वगैरह। अखबार वाले दैत्य के फोटो खींचना चाहते थे और अगले मौके की तलाश में थे।

उधर फुरसती वैज्ञानिक क्लब के सदस्य अपनी कामयाबी पर बहुत खुश थे। इतवार को क्लब की मीटिंग हुई। मीटिंग में तय हुआ कि दैत्य का प्रदर्शन रोज़ होना चाहिए। सब लोग जोश में तो थे ही। रोज़ शाम धुंधलका होते ही दैत्य को झाड़ियों में से निकाला जाता और कुछ समय तक घुमाने के बाद वापस रख दिया जाता।

दैत्य के कारण झील के किनारे भीड़ बढ़ने लगी। शाम को ढेरों लोग किनारे बैठे इन्तज़ार करते रहते। भीड़ बढ़ी तो खोमचे वालों, होटल वालों, खिलौने सभी की बिक्री भी बढ़ने लगी। शहर में चहल-पहल बढ़ गई। दूर-दूर से लोग पचमढ़ी शहर आने लगे। स्कूल-कॉलेज के छात्रों की पिकनिक वहीं होने लगी। दूसरे पर्यटक भी ज़्यादा आने लगे। होटलों - धर्मशालाओं के कमरे भर गए। दुकानों की बिक्री बढ़ गई। टाकीज़ में दोपहर के शो "हाउस फुल" चलने लगे।

एक सप्ताह बीत गया। तभी एक भयानक खबर आई। फुरसती वैज्ञानिक क्लब के एक पुराने सदस्य बदलू को पिछले साल क्लब से निकाल दिया गया था। वैसे तो वह बहुत अकलमंद था पर उसने क्लब की कुछ गोपनीय बातें बाहर बता दी थीं। इसीलिए उसे क्लब से बाहर कर दिया गया था। तब से बदलू क्लब के खिलाफ कुछ-न-कुछ करता रहता था। पता चला कि उसे कहीं से दैत्य की सच्चाई

की भनक लग गई थी। उसने जाकर किसी अखबार वाले से बात की। अखबार वालों ने उससे और सबूत लाने को कहा। तो अब वह सबूत के चक्कर में घूम रहा था। क्लब के सदस्यों को पता था कि देर सवेर वह ज़रूर मामले की गहराई तक पहुंच जाएगा। दूसरी बात इससे भी खतरनाक थी। उसने दो निशानेबाज़ों को बुला लिया था। और कहीं से मांगकर दो शिकारी बंदूकें ले आया था। अब उसकी योजना यह थी कि जैसे ही दैत्य झील में आएगा, उसके निशानेबाज़ गोली से उस पर हमला कर देंगे। हम लोग तो उस दैत्य के अन्दर होते हैं। यदि गोली चली, तो हमारा क्या होगा? उस शाम की मीटिंग में यही बात चल रही थी। आखिर गोली का सामना कैसे किया जाए? तभी रामनिवास कबाड़े की तरफ घूरने लगा। वह कबाड़े की तरफ घूर रहा था और बाकी सब उसकी तरफ। सब इन्तज़ार करते रहे। ऐसा लगा मानो घण्टों बीत गए हों। किसी की बीच में बोलने की हिम्मत भी नहीं हो रही थी। धीरे-धीरे रामनिवास ने कबाड़े पर से नज़र हटाई और बोला, "गयादीन तुम्हारे पिताजी के पास एक मोटर है ना?"

तीसरे दिन फिर से दैत्य निकल पड़ा। इस बार वह ज़्यादा तेज़ी से चल रहा था - मोटर जो लगी थी। फिर बीच-बीच में पानी का फव्वारा छूटता था और आवाज़ें निकलती थीं। झील के किनारे बैठे लोगों में हड़कम्प मच गया। लोग चीखने-चिल्लाने लगे। कैमरे चालू हो गए। धड़ाधड़ फोटो खिंचने लगे। ज़बरदस्त हंगामा रहा।

गयादीन, "हां।"

रामनिवास, "क्या हमें मिल सकती है?"

गयादीन सोचने लगा। फिर उसने हां कह दिया। बस, योजना बनने लगी। रामनिवास ने पूरा खाका पेश किया। हम दैत्य के अन्दर मोटर लगा देंगे। और क्लब का जो ट्रांसमीटर है उसके द्वारा दूर से बैठकर मोटर को चलाएंगे। दैत्य के अंदर किसी को बैठने की ज़रूरत नहीं। फिर बदलू कितनी भी गोलियां चलाता रहे।

'हुर्रे.......! अब तो बदलू का दिमाग ठिकाने आ जाएगा।' सब एक साथ चिल्लाए। सबको जोश आ गया। सबका जोश देखकर रामनिवास को और जोश आ गया। उसने बताया कि दैत्य के मुंह के ऊपर एक पाइप लगा देंगे जिसमें से फव्वारा छूटेगा। बीच-बीच में दैत्य फव्वारा छोड़ता जाएगा।

इसहाक को एक और विचार आया कि यदि दैत्य के अन्दर एक लाउडस्पीकर लगा दिया जाए, तो हम उसमें से ज़ोरदार गुर्राने की आवाज़ भी निकाल सकते हैं।

तो सब लोग जुट गए। दैत्य के छिपने की जगह पर जाकर उसमें सब फिटिंग का काम शुरू हो गया। ट्रांसमीटर में से

एक विशेष लम्बाई वाली तरंगें छोड़ी जाना थीं। उन तरंगों को ग्रहण करने की क्षमता दैत्य की मोटर में थी। इन्ही तरंगों से उसका संचालन होने वाला था। तेज़-धीमा करना, दाएं-बाएं, आगे-पीछे मोड़ना, पानी का फव्वारा, हर बात का संचालन दूर बैठे-बैठे। और गुर्राहट ऊपर से। यह सारा काम पूरा होते-होते दो दिन बीत गए।

तीसरे दिन फिर से दैत्य निकल पड़ा। इस बार वह ज़्यादा तेज़ी से चल रहा था - मोटर जो लगी थी। फिर बीच-बीच में पानी का फव्वारा छूटता था और आवाज़ें निकलती थीं। झील के किनारे बैठे लोगों में हड़कम्प मच गया। लोग चीखने-चिल्लाने लगे। कैमरे चालू हो गए। धड़ाधड़ फोटो खिंचने लगे। ज़बरदस्त हंगामा रहा।

बदलू अपने निशानेबाज़ों के साथ एक नाव पर बैठा इंतज़ार कर रहा था। रामनिवास ने दैत्य को उसी की तरफ मोड़ दिया। जीतू ने लाउडस्पीकर में से ज़ोर की आवाज़ निकाली। साथ में पानी का फव्वारा छूटा। निशानेबाज़ घबरा गए। नाव में उछल-कूद करने लगे। बदलू ने एक के हाथ से बन्दूक छीनकर दैत्य पर गोली चलाई परन्तु दैत्य पर क्या असर पड़ता, वह तो बढ़ता गया। अब बदलू को अपनी बन्दूक लेकर भागना पड़ा।

उस दिन का दैत्य शानदार रहा। दूसरे दिन दैत्य के नए रूप पर शहर भर में

चर्चा थी। यह खबर सुनकर देशभर के पत्रकार और फोटोग्राफर पचमढ़ी पहुंच गए। दिन-दिन भर वे झील के किनारे बैठे इन्तज़ार करते। कई सारे वैज्ञानिकों ने भी झील के किनारे डेरा डाल लिया। सबकी कोशिश यह थी कि नज़दीक से दैत्य के फोटो ले लें। वैज्ञानिकों में होड़ लगी थी कि कौन पहले इस दैत्य का रहस्य खोजता है। कुछ लोग तो फिल्म बनाने के लिए भी तैयारी कर रहे थे। टी.वी. पर भी खबर आ गई।

परन्तु पचमढ़ी शहर की नगरपालिका के अध्यक्ष की रातों की नींद हराम हो गई। एक तो इतने सारे लोगों के शहर में आने के कारण महंगाई बहुत बढ़ गई थी। हरेक चीज़ मुंहमांगे दामों पर बिक रही थी। खाने-पीने की चीज़ों की कमी पड़ने लगी थी।

परन्तु इससे भी ज़्यादा खतरनाक बात यह थी कि झील के आसपास सुरक्षा की समस्या खड़ी हो गई। दैत्य पता नहीं कब किस पर हमला कर बैठे। अब तो वह ज़्यादा तेज़ चलता था और गुर्राने भी लगा था। नगरपालिका अध्यक्ष सदरनारायण बहुत परेशान थे। उनके पास मुख्यमंत्री का फोन तक आ चुका था। उन्होंने तीन गश्ती नौकाएं पचमढ़ी भेज दी थीं। ये दिन-रात झील का चक्कर काटती रहती थीं। इन पर सर्चलाइट भी लगी हुई थी। दैत्य का सुराग देने वाले के लिए 1000 रुपए के पुरस्कार की घोषणा भी हो गई।

फुरसती वैज्ञानिकों को इससे काफी चिन्ता हुई। इसी बीच एक वैज्ञानिक ने यह भी घोषणा कर डाली कि शायद यह दैत्य का प्रजनन काल है। इसलिए शायद एक नहीं, दो दैत्य झील में होंगे। अब तो ज़ोर-शोर से दैत्य की तलाश जारी थी। झील और उसके आसपास का चप्पा-चप्पा छानने की योजना बन चुकी थी। उधर बदलू भी दैत्य की तलाश कर रहा था। शायद उसे अंदाज़ लग गया था कि दैत्य को कहां छिपाया गया है।

इसी बीच एक वैज्ञानिक ने यह भी घोषणा कर डाली कि शायद यह दैत्य का प्रजनन काल है। इसलिए शायद एक नहीं, दो दैत्य झील में होंगे। अब तो ज़ोर-शोर से दैत्य की तलाश जारी थी। झील और उसके आसपास का चप्पा-चप्पा छानने की योजना बन चुकी थी। उधर बदलू भी दैत्य की तलाश कर रहा था। शायद उसे अंदाज़ लग गया था कि दैत्य कहां छिपा है।

इसलिए फुरसती वैज्ञानिक क्लब ने तय किया कि दैत्य को छिपाने की जगह बदल दी जाए। दैत्य को झील की दूसरी तरफ ले जाया गया। उधर पहाड़ियां थीं। पहाड़ियों की ओर के दलदल में उसे छिपा दिया गया। अगले दिन उसे वहीं से निकालकर झील की सैर कराई गई। लोग आश्चर्यचकित रह गए। आज दैत्य नए स्थान से निकला था। इससे वैज्ञानिक

की बात सही साबित होती थी कि वास्तव में दैत्यों का जोड़ा है।

सारी स्थिति को देखते हुए क्लब की बैठक आयोजित की गई। सबको मज़ा आ रहा था।

यह भी खुशी थी कि झील के पास लोगों का व्यवसाय भी अच्छा चलने लगा था। क्लब के कुछ सदस्य खुद भी समोसे वगैरह बेचकर क्लब के लिए पैसा जमा कर रहे थे। पर किसी को यह समझ में नहीं आ रहा था कि यह कब तक चलेगा। पकड़े जाना तो अब तय था, आज नहीं तो कल। उधर सदरनारायण जी की भी चिन्ता थी। पर किसी सदस्य को यह समझ नहीं पड़ रहा था कि क्या करें। कुछ समय बाद अध्यक्ष गयादीन ने सुझाव दिया कि चलकर सब कुछ सच-सच कबूल कर लेना चाहिए और दैत्य से पीछा छुड़ाना चाहिए। थोड़ी देर बातचीत के बाद तय हुआ कि किसी पत्रकार को पूरी बात बता दी जाए। फिर बाद में दैत्य का क्या करना है सोचेंगे। इसमें पुरस्कार के 1000 रुपए भी क्लब को मिल जाएंगे।

तो एक राष्ट्रीय अखबार 'दैनिक भागमभाग' के पत्रकार से संपर्क करके उसे पूरी बात बता दी गई। वह मदद देने को राज़ी हो गया। उसकी बस यही शर्त थी कि उसे करीब से दैत्य के फोटो खींचने को मिल जाएं। इसके बदले में उसने वादा किया कि वह दैनिक भागमभाग से कहकर क्लब को एक नया ट्रांसमीटर और एक दूरबीन दिलवा देगा। क्लब के सदस्य पत्रकार को लेकर दैत्य की गुफा में गए। पत्रकार ने तरह-तरह से दैत्य के फोटो खींचे। अन्दर से, बाहर से, दाएं से, बाएं से, खूब सारे रंगीन फोटो खींचे। फिर उसने कहा कि वह चलते-फिरते दैत्य का फोटो खींचना चाहता है। तो यह तय हुआ कि अगले दिन सुबह-सुबह वह हैलीकॉप्टर में बैठकर झील का चक्कर लगाएगा और उसी समय दैत्य को बाहर निकाला जाएगा ताकि पत्रकार फोटो खींच सके।

क्लब के सदस्य सुबह चार बजे ही पहाड़ियों के पीछे पहुंच गए। कुछ समय बाद हैलीकॉप्टर दिखाई दिया। पत्रकार ने ऊपर से इशारा किया और दैत्य को बाहर निकाला गया। दैत्य ने उस दिन ऐसा हैरत-अंगेज़ प्रदर्शन किया कि क्लब के सदस्य भी भौंचक्के रह गए।

पहले तो दैत्य सीधा झील के बीचों-बीच पहुंच गया। फिर वहां फव्वारा छोड़कर, गुर्राकर वापस पलटने को ही था कि रामनिवास हक्का-बक्का रह गया। वह यहां से बटन-वटन दबा रहा था पर दैत्य था कि मुड़ता ही नहीं था। दैत्य तेज़ी से आगे बढ़ा। सामने गश्ती नौका खड़ी थी। ऐसा लगा कि अब दैत्य उससे टकरा जाएगा। बिल्कुल पास पहुंचकर दैत्य दाहिनी ओर मुड़कर नौका के बाजू से निकल गया। गश्ती नौका में सवार सब लोग डरकर एक तरफ को भागे। इस चक्कर में नौका का संतुलन बिगड़ गया और वह पलट गई। पूरा गश्ती दल बमुश्किल तैर-तारकर किनारे लगा। पर दैत्य ने अभी बस नहीं किया। उसने झील में अजीब-अजीब करतब दिखाने शुरू

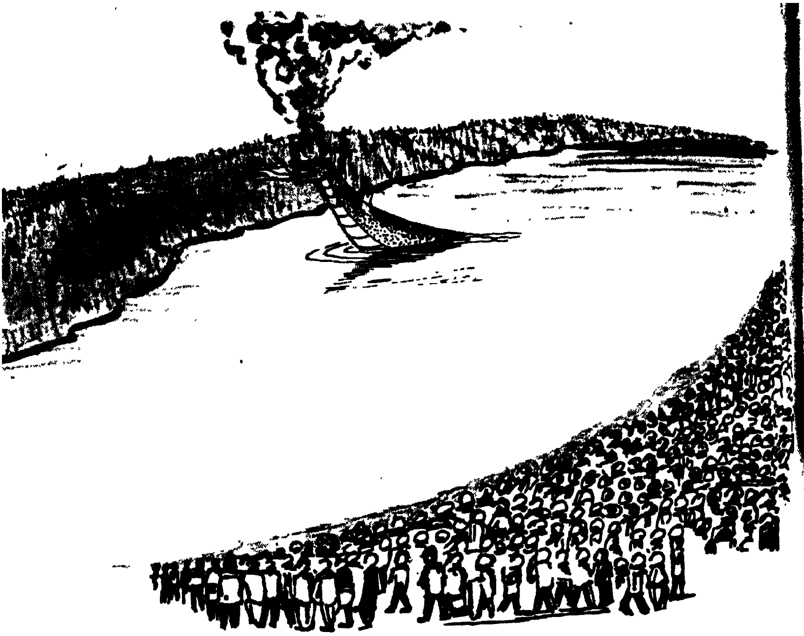

किए। रामनिवास के करने से वह काबू में ही नहीं आ रहा था। किनारे खड़े लोग और झील में नाव में बैठे लोगों में भगदड़ मच गई।

तभी इसहाक की तन्द्रा टूटी। उसे एकदम से विचार आया कि हो न हो, यह बदलू की करतूत है। बदलू को यह तो मालूम ही था कि क्लब का ट्रांसमीटर कितनी लम्बाई की तरंगें फेंकता है। उसने उसी जैसा ट्रांसमीटर लगा लिया होगा और अब दैत्य उसके कब्ज़े में है। बदलू के आदेशों पर ही दैत्य सारे करतब कर रहा है। इसहाक ने तुरन्त रामनिवास से कहा "दैत्य की बिजली बन्द कर दो।" रामनिवास ने तत्काल दैत्य की बिजली बन्द कर दी।

दैत्य यकायक रुक गया। इतने झटके से रुका कि उसका मुंह पानी में डूब गया। पूरा डुबते-डूबते बचा। बिजली कट जाने के कारण ट्रांसमीटर का उस पर कोई नियंत्रण नहीं था। रामनिवास ने एक और ट्रांसमीटर साथ रखा था कि कभी एक काम करना बंद कर दे तो ठीक रहेगा। तुरन्त दूसरे ट्रांसमीटर को चालू किया गया। इसकी तरंग-लम्बाई पहले वाले से अलग थी। अब फिर से बिजली चालू करके नई तरंगों से दैत्य को काबू में किया गया। बदलू को नई तरंगों की लम्बाई तो पता नहीं थी। इसलिए अब दैत्य रामनिवास के आदेश के अनुसार वापस आ गया।

अगले दिन सारे सदस्य फिर सुबह-सुबह झील पर उपस्थित हुए। दैत्य को निकालने से पहले कुछ इन्तज़ाम करने

थे। उसके अन्दर की मोटर, लाउडस्पीकर, बल्ब, पाइप वगैरह निकाल दिए गए। फिर गयादीन ने उसमें कुछ अजीबो-गरीब चीज़ें रख दीं।

सुबह होते-होते दैत्य को झील में धक्का दिया गया। दैत्य धीरे-धीरे तैरता हुआ झील में बढ़ गया। जब दैत्य झील में काफी अन्दर तक चला गया, तो पत्रकार, फोटोग्राफर वगैरह अपनी-अपनी नावों में सवार होने लगे। सर्चलाइटें जल उठीं। पर आज किसी की उसके पास फटकने की हिम्मत नहीं हुई। कुछ समय तक दैत्य झील में इधर-उधर लहराता रहा। जब थोड़ी धूप निकल आई, तो रामनिवास ने उसके पास रखे एक उपकरण का बटन दबाया। बटन दबाने की देर थी और दैत्य के मुंह में से लपटें निकलने लगीं। धीरे-धीरे पूरा दैत्य जल उठा। सब तरफ धुंआ-ही-धुआं फैल गया। जब धुंआ छंटा तो वहां झील पर कुछ नहीं था। बस थोड़ा तेल झील पर फैला हुआ था। यह दैत्य का आखिरी दर्शन था।

क्लब के सदस्य भारी मन से वापस चल दिए। जीतू को थोड़ा रोना भी आया। आखिर यह दैत्य उसी का तो था। सबने उसे सांत्वना दी। क्लब की अगली मीटिंग में उसे एक की बजाए दो वोट डालने का अधिकार दिया गया।

* बरट्रैण्ड आर. ब्रिनले की पुस्तक 'मैड साइन्टिस्ट क्लब' की एक कहानी 'दि स्ट्रेन्ज सी मॉन्स्टर ऑफ स्ट्रॉबेरी लेक' पर आधारित।

इसकी पीठ तो देखो!

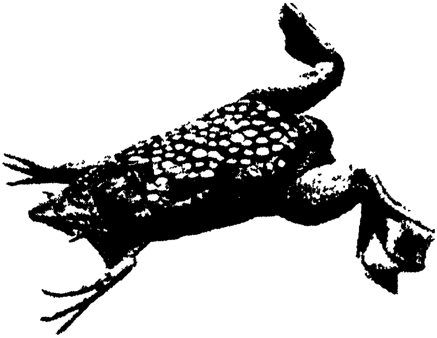

इस मादा टोड की पीठ को देखिए तो ज़रा, क्या है...धब्बे! हमें भी ऐसा ही लगा था लेकिन जब खोजबीन की तो मालूम पड़ा कि जिन्हें हम धब्बे समझ रहे थे वो पीठ में बने खानों (chambers) में रखे अंडे हैं। खाने और वो भी पीठ में, कुछ अजीब सी बात लगी न। दरअसल सूरीनाम में मिलने वाले टोड की इस प्रजाति की मादा की पीठ में ऐसे खाने बने होते हैं जिनका उपयोग यह अंडे रखने के लिए करती है, और अंडे तब तक रखे रहते हैं जब तक कि उनमें से बच्चे नहीं निकल आते।

पुस्तक परिचय

कठिन सिद्धांत - सरल प्रयोग

पुस्तक - साइंस एक्टिविटीज़ विथ प्लास्टिक टंग क्लीनर
लेखक - डॉ. ललित किशोर एवं तुषार ताम्हणे
पृष्ठ संख्या - 64, प्रायोगिक संस्करण 1993
पता - रिसोर्स सेंटर
कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया
राजघाट फोर्ट, वाराणसी उ.प्र.
पिन - 221001

आमतौर पर स्कूली पाठ्यक्रमों में प्रयोगों और गतिविधियों पर आधारित सामग्री का अभाव होता है या प्रयोगों वाली सामग्री कक्षाओं में विशेष भूमिका नहीं निभा पाती। अगर किताबों में प्रयोग दिए भी हों तो प्रयोगशालाएं नहीं होतीं। इसलिए विद्यार्थी 'करके सीखो' वाली प्रक्रिया से वंचित रह जाता है और विज्ञान के विभिन्न सिद्धांतों को रटकर या यादकर समझता है। परिणाम यह होता है कि विद्यार्थियों को विषय का व्यावहारिक ज्ञान नहीं मिल पाता। इन्हीं दिक्कतों को ध्यान में रखकर 'साइंस एक्टिविटीज़ विथ प्लास्टिक टंग क्लीनर' पुस्तक लिखी गई है। इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य है कि विद्यार्थी इस सामग्री का उपयोग करते हुए अपने भीतर छुपी खोजी प्रवृत्ति को विकसित कर सकें।

पुस्तक में कुल 24 प्रयोग दिए गए हैं जो विज्ञान के विविध सिद्धांतों पर आधारित हैं। जैसे - स्थिर विद्युत, गति, घर्षण, जड़त्व आदि। सभी प्रयोग रोज़ सुबह उपयोग में आने वाली जीभी (टंग क्लीनर) के साथ किए गए हैं। इन खेलों को लगभग सभी घरों में मिलने वाली चीज़ों से किया जा सकता है। जैसे - जीभी, कागज़, हवाई चप्पल का सोल, धागा, रीफिल, आलपिन, सुई, माचिस, बोतल के ढक्कन आदि।

पुस्तक में दी गई गतिविधियां माध्यमिक स्तर की कक्षाओं में आसानी से करवाई जा सकती हैं। विद्यार्थी इन गतिविधियों के पीछे छुपे वैज्ञानिक सिद्धांतों को सरलता से समझ सकते हैं। इन खेलों को करने के लिए किसी विशेष स्तर की प्रयोगशाला या प्रयोग सामग्री

की ज़रूरत नहीं है। विद्यार्थी इसे कक्षा से बाहर भी कर सकते हैं। सभी गतिविधियों के साथ आवश्यक सामग्री, निर्देश तथा चित्र दिए गए हैं। प्रत्येक प्रयोग के बाद अवलोकनों के साथ ही प्रयोग को और आगे बढ़ाने के लिए कुछ बातें सुझाई गई हैं।

अवलोकनों पर आधारित प्रश्नों में कुछ विविधता हो सकती थी। लेकिन अमूमन प्रत्येक प्रयोग के अंत में दो तरह के प्रश्न ही पूछे गए हैं - तुमने क्या देखा, और ऐसा क्यों हुआ? यदि प्रश्नों को अवलोकनों के छोटे-छोटे हिस्सों पर केन्द्रित करक पूछा जाता तो ज़्यादा बहतर होता।

बच्चों में सृजनशीलता और खोजी प्रवृत्ति विकसित करने के उद्देश्य से लिखी यह पुस्तक अंग्रेज़ी में होने के कारण हिन्दी-भाषी पाठकों के लिए असुविधा हो सकती है। इस की उपयोगिता को देखते हुए इसका हिन्दी अनुवाद भी किया जाना चाहिए ताकि अधिक-से-अधिक पाठक इससे लाभान्वित हो सकें।

पुस्तक की छपाई साधारण है, चित्र पर्याप्त संख्या में दिए गए हैं। लेकिन कुछ चित्र प्रयोगों को ठीक-ठीक नहीं समझा पाते। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि पुस्तक सस्ती सामग्री के माध्यम से विद्यार्थियों में प्रयोग करने की लालसा पैदा करेगी।

* माधव केलकर

कुछ प्रयोग इसी किताब से

पहला प्रयाग

सामग्री - प्लास्टिक की जीभी, कागज़ के छोटे-छोटे टुकड़े, कॉपी का कागज़।

प्रयोग - कागज़ को बीच से मोड़ लो। जीभी को एक तरफ से पकड़कर उसके दूसरे हिस्से को कागज़ के बीच में रखकर कम-से-कम दस बार रगड़ो। अब इसे कागज़ के टुकड़ों के पास ले जाओ, टुकड़े जीभी की तरफ खिंचे आएंगे। ऐसा क्यों हुआ?

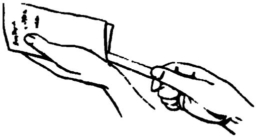

जीभी की तरफ खिंचने वाले टुकड़ों की संख्या लिख लो। इस प्रयोग को फिर दोहराओ। इस बार जीभी को कागज़ से कम या ज़्यादा बार रगड़कर देखो। इस बार जीभी की तरफ कितने कागज़ के टुकड़े खिंचे? पता करो कि क्या जीभी रगड़ने और टुकड़ों के आकर्षित होने की संख्या में कोई संबंध है?

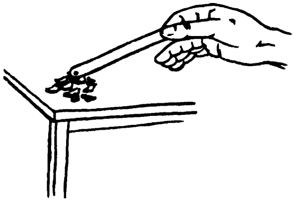

दूसरा प्रयोग

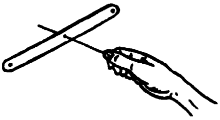

सामग्री - दो प्लास्टिक की जीभी, टिच बटन, सुई, मोमबत्ती, माचिस, कागज़।

प्रयोग - मोमबत्ती जलाकर सुई की नोंक गरम कर लो। अब एक जीभी के बीचों-बीच इस गरम नोक से छेद कर लो। इस छेद में टिच बटन लगाना है। इसके लिए जीभी के ऊपर और नीचे टिच बटन का एक-एक हिस्सा रखकर दबा दो। सुई के दूसरे सिरे को रबर की किसी चीज़ में फंसा लो। यह सुई का स्टैण्ड बन जाएगा। बटन लगी जीभी के एक सिरे को कागज़ के बीच रखकर रगड़ो, फिर इसे स्टैण्ड लगी सुई पर इस तरह रखो कि सुई की नोक टिच बटन के छेद में फंस जाए। अब दूसरी जीभी को भी कागज़ से रगड़ो। फिर इसे सुई पर लगी जीभी के रगड़े हुए हिस्से के पास लाओ। पता करो क्या हुआ?

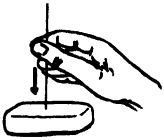

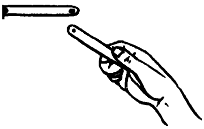

ऐसा क्यों हुआ?

* * *

तीसरा प्रयोग

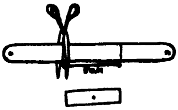

सामग्री - एक प्लास्टिक जीभी, आलपिन, मोमबत्ती, लकड़ी का टुकड़ा।

प्रयोग - जीभी का छेद वाला हिस्सा काटकर अलग कर लो। बाकी बचे टुकड़े में से 5 सेन्टीमीटर का टुकड़ा काट लो। इसके बाद भगोने में थोड़ा-सा पानी उबालकर इसमें जीभी के इस टुकड़े को थोड़ी देर पड़ा रहने दो। फिर इसे चिमटी से पकड़ कर बाहर निकाल लो और इसके आमने-सामने के दोनों

कोनों को पकड़कर चित्र में दिखाए तरीके से मोड़ लो। अब सुई की नोंक को गरम कर इस टुकड़े के बीचों-बीच छेद करो और इसमें आलपिन घुसा दो। अब इस आलपिन की नोक को लकड़ी के टुकड़े में गड़ा दो। यह बन गई चरखी। अब लकड़ी को पकड़कर तेज़ी से हवा में घुमाओ। पता करो - क्या चरखी के घूमने की गति और हाथ के घूमने की गति में कुछ सम्बन्ध है? यदि है तो क्या?

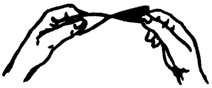

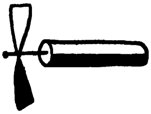

किसी पंखे के पास चरखी को ले जाओ। चरखी घूमने लगेगी। पंखे और चरखी के बीच की दूरी बदलते रहो। क्या इस दूरी का बदलना चरखी के घूमने की गति को भी बदलता है?

* * *

चौथा प्रयोग

सामग्री - मोमबत्ती, सुई, कागज़, प्लास्टिक की जीभी, प्लास्टिक की बोतल।

प्रयोग - मोमबत्ती जलाकर सुई की नोक को गरम कर लो। बोतल के पेंदे के बीचों-बीच गरम सुई से छेद कर लो। अब इस बोतल में पानी भर लो। बोतल का पानी छेद से होकर एक पतली-सी धार बनाकर बहने लगेगा। अब जीभी को कागज़ में लपेटकर कम-से-कम दस बार रगड़ो। फिर इसे बहते हुए पानी की धार के पास लाओ।

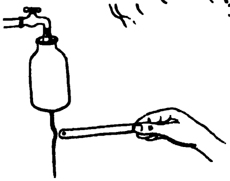

पता करो - जीभी जहां धार के करीब है क्या वहां धार की दिशा जीभी की तरफ मुड़ जाएगी? ऐसा क्यों हुआ?

(माधव केलकर– संदर्भ में कार्यरत
शशि सबलोक – एकलव्य की बाल गतिविधियों से संबद्ध)

प्रयोगों का संकलन एवं अनुवाद – शशि सबलोक

खुजलाइए . . . . .

आइए एक प्रयोग करते हैं। एक कीप की सहायता से बोतल में कोई द्रव उड़ेलिए। यह क्या? कीप में द्रव इकट्ठा क्यों हो रहा है, नीचे क्यों नहीं जा रहा? कीप को बार-बार क्यों उठाना पड़ रहा है?

घर में लगे नल की टोंटी खोलिए। बहती धार को ध्यान से देखिए, धार ऊपर से मोटी और नीचे की ओर जाने पर पतली होती जाती है। ऐसा क्यों?

शायद आपके पास इन सवालों के जवाब हों। हमें लिख भेजें। संदर्भ, द्वारा एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद, 461 001 के पते पर। सही जवाबों को अगले अंक में प्रकाशित करेंगे।

यूं ही एक किताब पलट रहे थे कि अचानक ये दो चित्र दिखे। गौर किया तो लगा कि ये तो आंखों के भीतर की एक पूरी-की-पूरी व्यवस्था को दिखा रहे हैं। सोचा क्यों न आपको भी दिखाए जाएं।

दरअसल देखने के लिए एक निश्चित सीमा तक रोशनी की ज़रूरत होती है। लेकिन कभी ज़रूरत से ज़्यादा रोशनी मिलने लगे, या कम तो क्या होता है? इस व्यवस्था का प्रबंध सम्हालना आइरिस की मांसपेशियों के जिम्मे है। आवश्यकता से तेज़ रोशनी मिलने पर जैसे कि धूप में, ये मांसपेशियां पुतली के आसपास सिकुड़कर उस घेरे को संकरा कर देती हैं जहां से होकर रोशनी आंख के भीतर जाती है। अब आंख में कम रोशनी प्रवेश कर पाती है। दूसरी ओर कम रोशनी में ये मांसपेशियां फैलती हैं - पुतली का आकार बड़ा हो जाता है और ज़्यादा रोशनी आंख में जा पाती है। वैसे देखा यह भी गया है कि घबराहट में या किसी चीज़ पर निगाहें केंद्रित करने पर भी पुतली का आकार बड़ा हो जाता है। तो अब समझा हमने कि तेज़ रोशनी में आंखें चुंधिया क्यों जाती हैं या कम रोशनी में आंखें फाड़-फाड़कर क्यों देखना पड़ता है!

प्रकाशक : एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद - 461 001

मुद्रक : आदर्श प्रिंटर्स, महाराणा प्रताप नगर, भोपाल - 462 016

12772